सामयिक वार्ता

जून 2016 ❒ मूल्य : 20 रुपए



गुजरात मॉडल से बगावत

अघोषित उलगुलान*

अनुज लुगुन

अल सुबह दान्डू का काफ़िला
रुख क़रता है शहर की ओर
और साँझ ढले वापस आता है
परिन्दों के झुण्ड-सा,

अजनबीयत लिए शुरू होता है दिन
और कटती है रात
अधूरे सनसनीखेज क़िस्सों के साथ
कंक्रीट से दबी पगडंडी की तरह
दबी रह जाती है
जीवन की पदचाप
बिल्कुल मौन !

वे जो शिकार खेला करते थे निश्चिंत
ज़हर-बुझे तीर से
या खेलते थे
रक्त-रंजित होली
अपने स्वत्व की आँच से
खेलते हैं शहर के
कंक्रीटीय जंगल में
जीवन बचाने का खेल

शिकारी शिकार बने फिर रहे हैं
शहर में
अघोषित उलगुलान में
लड़ रहे हैं जंगल

लड़ रहे हैं ये
नक्शे में घटते अपने घनत्व के खिलाफ़
जनगणना में घटती संख्या के खिलाफ़
गुफ़ाओं की तरह टूटती
अपनी ही जिजीविषा के खिलाफ़

इनमें भी वही आक्रोशित हैं
जो या तो अभावग्रस्त हैं
या तनावग्रस्त हैं
बाकी तटस्थ हैं
या लूट में शामिल हैं
मंत्री जी की तरह
जो आदिवासीयत का राग भूल गए
रेमण्ड का सूट पहनने के बाद ।

कोई नहीं बोलता इनके हालात पर
कोई नहीं बोलता जंगलों के कटने पर
पहाड़ों के टूटने पर
नदियों के सूखने पर
ट्रेन की पटरी पर पड़ी
तुरिया की लावारिस लाश पर
कोई कुछ नहीं बोलता

बोलते हैं बोलने वाले
केवल सियासत की गलियों में
आरक्षण के नाम पर
बोलते हैं लोग केवल
उनके धर्मांतरण पर
चिंता है उन्हें
उनके 'हिन्दू' या 'ईसाई' हो जाने की

यह चिंता नहीं कि
रोज कंक्रीट के ओखल में
पिसते हैं उनके तलबे
और लोहे की ढेंकी में
कूटती है उनकी आत्मा
बोलते हैं लोग केवल बोलने के लिए।

लड़ रहे हैं आदिवासी
अघोषित उलगुलान में
कट रहे हैं वृक्ष
माफियाओं की कुल्हाड़ी से और
बढ़ रहे हैं कंक्रीटों के जंगल ।

दान्डू जाए तो कहाँ जाए
कटते जंगल में
या बढ़ते जंगल में ।

---

* आन्दोलन

सामयिक वार्ता

जून 2016, वर्ष 39 अंक 9-10

आवरण चित्र : रेने लेमुरे रचित **'विवरे'** नामक टेराकोटा कृति। मीना कांडस्वामी के लेख से साभार।

खाता नाम - सामयिक वार्ता
या Samayik Varta
बैंक ऑफ बड़ौदा (Bank of Baroda)
शाखा - सोनारपुरा, वाराणसी
Sonarpura, Varanasi (U.P.)
खाता संख्या **40170100005458**
IFSC Code : BARB0SONARP
(यहाँ दूसरे B के बाद जीरो है, ओ नहीं
S के बाद O (ओ) है।)
MICR CODE : 221012030
इस खाते में पैसा जमा करने तथा ग्राहक के पते की सूचना
इ-मेल अथवा मोबाइल-08765811730/ 08004085923

कार्यालय
डी. 28/160, पाण्डे हवेली, वाराणसी-221001
फोन : 08004085923 (संपादन),
08765811730 (प्रबंध)
e-mail- varta3@gmail.com

इस अंक में

सदस्यता शुल्क : एक प्रति : 20/-, वार्षिक शुल्क : 150/-, संस्थागत वार्षिक शुल्क : 200/-
पाँच वर्षीय शुल्क : 600/-, आजीवन शुल्क : 2000/-

सम्पादकीय

बेअसर या कपटपूर्ण?

केन्द्र में भारतीय जनता पार्टी की सरकार बनने के बाद हुई तीन-चार घटनाओं पर गौर करें । यह सभी घटनाएं जाति-उत्पीड़न,साम्प्रदायिकता और राष्ट्रतोडक राष्ट्रवाद द्वारा पैदा उन्माद में से किसी न किसी से जुड़ी हैं। इनमें संघ परिवार के विभिन्न घटकों की प्रतिक्रिया , उसके बाद उन पर प्रधान मंत्री की प्रतिक्रिया तथा प्रधान मंत्री की प्रतिक्रिया का बेअसर हो जाना गौरतलब हैं।

हैदराबाद केन्द्रीय विश्वविद्यालय के अत्यन्त मेधावी शोध छात्र रोहित वेमुला की आत्महत्या से देश भर में हलचल पैदा हो गई। भारतीय जनता पार्टी के नेता द्वारा केन्द्रीय मानव संसाधन मंत्री को लिखे गये पत्र और इन पत्रों के आधार पर केन्द्रीय मानव संसाधन मंत्री द्वारा कुलपति को इन छात्रों के खिलाफ कार्रवाई करने के लिए बार-बार पत्र लिखना अन्ततः रोहित की आत्महत्या का कारण बने थे।देश भर के शैक्षणिक संस्थानों में इसके खिलाफ आक्रोश फूटा। इस परिस्थिति में प्रधान मंत्री लखनऊ के अम्बेडकर विश्वविद्यालय के दीक्षान्त समारोह में शामिल हुए।दीक्षान्त समारोह में कुछ मेधावी दलित छात्रों ने हैदराबाद की घटना का विरोध किया जिसके बाद रुंधे हुए गले से प्रधान मंत्री बोले,'मां भारती का एक लाल छिन गया'। विश्वविद्यालय में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ से जुड़े छात्र संगठन – विद्यार्थी परिषद से लगायत केन्द्रीय मानव संसाधन प्रधान मंत्री के उद्गार की भावना के विपरीत आचरण कर रहे थे। प्रधान मंत्री के अश्रुपूर्ण उद्गार का विश्वविद्यालय के प्रशासन पर कोई असर नहीं हुआ। केन्द्रीय मानव संसाधन मंत्री का विभाग जरूर बदला गया लेकिन इसे भी सजा कत्तई नहीं माना जा सकता।

पिछले साल गोमांस खाने का आरोप लगा कर उत्तर प्रदेश के दादरी में एक व्यक्ति की नियोजित हत्या की गई। इस हत्या के खिलाफ देश भर में आक्रोश प्रकट हुआ। मृतक का एक पुत्र वायु सेना में कार्यरत है जिसके फलस्वरूप वायु सेनाध्यक्ष की पहल पर घटना में घायल मृतक के दूसरे पुत्र का वायु सेना के अस्पताल में इलाज हुआ तथा उस परिवार को अन्यत्र रहने की व्यवस्था का भी वायु सेना ने प्रस्ताव दिया।गोमांस खाने और गोवध के नाम पर राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ की भूमिका अत्यन्त गौरतलब और हास्यास्पद है। हरियाणा सरकार द्वारा ईद के पहले बिरियानी में गोमांस के लिए जांच के नाम पर अभियान चलाया गया वहीं गोआ की भाजपा इकाई द्वारा वहां के इसाइयों के गोमांस भक्षण पर अनापत्ति के सार्वजनिक बयान आए तथा पूर्वोत्तर भारत में तो गोमांस खाने वाले संघ की शाखा में भाग ले सकते हैं ,यह तक कहा गया।केन्द्रीय मन्त्रिमंडल में पूर्वोत्तर के नुमाइन्दे गृह राज्य मंत्री ने गोमांस खाने वालों के पक्ष में वक्तव्य दिया ।

पिछले दिनों गोवध बन्दी के लिए समर्पित एक संत से मुलाकात हुई। वे इस मांग के लिए तिहाड जेल में भी रहे हैं।भाजपा को हरयाणा के विधान सभा चुनाव में इनके अभियान से लाभ भी मिला था।उनकी एक छोटी सी मांग हरयाणा की भाजपा सरकार मानने के लिए तैयार नहीं है कि प्रत्येक गांव में गोचर की भूमि गायों के लिए सुरक्षित कर दी जाए।

देश भर में कथित 'गोरक्षकों' के संगठित गिरोह बन गये हैं।इनके द्वारा अब तक बीफ निर्यात के बडे बडे बूचडखानों को बन्द कराने के लिए कोई कार्यक्रम नहीं लिया गया। इन 'गोरक्षकों' द्वारा मुसलमानों के बेवजह उत्पीडन के अलावा प्रधान मंत्री के गृह प्रदेश गुजरात में मृत गोवंश पशुओं का चमडा उतारने वाले दलितों को भी सार्वजनिक तौर पर पीटा गया। इस पूरे प्रकरण की गुजरात के दलितों में तीव्र प्रतिक्रिया हुई तथा एक संगठित आन्दोलन के रूप में इसका प्रतिवाद शुरु कर दिया तथा जिला मुख्यालयों पर मृत पशुओं को छोड़ दिया तथा मृत पशुओं का चमडा उतारने तथा अंतिम क्रिया करने से इंकार कर दिया है।(इस आन्दोलन के बारे में सुभाष गाताडे का लेख इस अंक में है।) ऐसी परिस्थिति में देश के प्रधान मंत्री का वक्तव्य आया,'गोरक्षा के नाम पर उत्पीड़न के खिलाफ कड़ी कार्रवाई होगी।' बहरहाल इस बयान के बाद गत वर्ष दादरी में हुई हत्या के आरोपी की जेल में हुई मृत्यु के बाद केन्द्रीय मंत्री उसके परिवारजनों से मिलने गये,मानो किसी शहीद से मिलने गये हों।

तीसरी घटना कश्मीर में एक सैनिक छावनी पर

आतंकवादियों द्वारा नृशंस हमले के बाद के हालात से संबन्धित है। केन्द्र में कांग्रेस सरकार के वक्त तथा लोक सभा चुनाव में प्रधान मंत्री जिस प्रकार के अतिरंजित भाषण दिया करते थे उसका नतीजा यह हुआ कि देश भर में उन्माद फैला।हमारे एक पटरी व्यवसायी साथी ने कहा कि ,'चलिए,अब तो पाकिस्तान अधिकृत कश्मीर मुक्त हो जाएगा।' इन परिस्थितियों में अपने दल की बैठक में प्रधान मंत्री ने भाषण दिया ,'भारत और पाकिस्तान गरीबी,भूखमरी,बेरोजगारी खतम करने के लिए लड़ें,युद्ध न करें।' ऐसा प्रतीत हुआ कि प्रधान मंत्री के इस बयान के बाद उन्माद का उफान शान्त हो जाएगा।कुछ ही दिनों पश्चात भारतीय सेना ने नियन्त्रण रेखा पार कर उग्रवादी ठिकानों पर हमला किया।इस कार्रवाई की बाबत सरकार ने सभी प्रमुख दलों को बुला कर सूचना दी और उनकी सहमति हासिल की।बहरहाल, इसके बावजूद उत्तर प्रदेश के शहरों में भारतीय जनता पार्टी द्वारा बडे बडे होर्डिंग लगा कर प्रधान मंत्री को बधाई दी जा रही है।

इन सभी प्रकरणों में प्रधान मन्त्री के बयानों का बेअसर होना क्या साबित करता है?क्या इन बयानों को भाजपा अध्यक्ष के शब्द में 'सिर्फ जुमले' मान लिया जाए?क्या प्रधान मंत्री अशक्त प्रभावहीन हो गये हैं? यदि ऐसा नहीं है तो मानना पडेगा कि देश में एक तिकड़म अथवा कपट चल रही है।

–अफलातून

'गुजरात मॉडल' से बगावत

सुभाष गाताडे

जब मैं पैदा हुआ तब मैं बच्चा नहीं था
मैं एक स्वप्न था, एक विद्रोह का स्वप्न
जिसे मेरी मां, जो हजारों सालों से उत्पीड़ित थी
उसने संजोया था
अब अभी भी मेरी आंखों में अछूता पड़ा है
हजारों सालों की झुर्रियों से ढंका उसका चेहरा
उसकी आंखें, आंसूओं से भरे दो तालाबों ने
मेरे शरीर को नहलाया है

– साहिल परमार

गुजराती के जानेमाने कवि साहिल परमार की कविता 'जब मैं पैदा हुआ' के एक हिस्से का मूल गुजराती से अनुवाद, जी के वनकर द्वारा, http://roundtableindia.co.in/lit-blogs/?tag=sahil-parmar

गाय से प्रेम, मनुष्य से नफरत ?

हर अधिनायकवादी परियोजना की विकासयात्रा में ऐसे मुक़ाम अचानक आ जाते हैं कि उसके द्वारा छिपायी गयी तमाम गोपनीय बातें अचानक जनता के सामने बेपर्द हो जाती हैं और बिगड़ते हालात को संभालना उसके लिए मुश्किल हो जाता है। हिन्दुत्व की ताकतें फिलवक्त अपने आप को इसी स्थिति में पा रही हैं। गुजरात में उदघाटित होते दलित विद्रोह ने उसके लिए बेहद असहज स्थिति पैदा कर दी है, जो आज भी विकसित होता दिख रहा है।

सौराष्ट्र के उना में 15 अगस्त को 'उना अत्याचार लडत समिति; की अगुआई में पहुंची दलित अस्मिता यात्रा अब समाप्त हो गयी हो; उसमें शामिल हजारों दलित, जो राज्य के अलग अलग हिस्सों से वहां पहुंचे थे, अब भले घरों की लौट गए हों, मगर उनका यह संकल्प कि हाथ से मल उठाने, सीवर में उतर कर उसकी सफाई करने या मरे हुए पशुओं की खाल उतारने के काम को अब नहीं करेंगे, आज भी हवा में गूंज रहा है और राज्य सरकार से उनकी यह मांग, कि वह पुनर्वास के लिए प्रति परिवार 5 एकड़ जमीन वितरण का काम शुरू करे वरना 15 सितम्बर से वह रेल रोको आन्दोलन का आगाज़ करेंगे, के समर्थन में नयी नयी आवाज़ें जुड़ रही हैं।

निश्चित ही हिन्दुत्व बिरादरी के किसी भी कारिन्दे ने या उसके अलमबरदारों ने इस बात की कल्पना तक नहीं की होगी कि उनके 'मॉडल राज्य' /जहां 'आप हिन्दु राष्ट में प्रवेश कर रहे हैं, ऐसे बोर्ड गांवों-कस्बों में लगने का सिलसिला 90 के दशक के अन्त में ही उरूज पर पहुंचा था/ में ही उन्हें ऐसी चुनौती का सामना करना पड़ेगा और जिससे उन्होंने बहुत मेहनत से बनाए सकल हिन्दू गठजोड़ की चूलें हिलने लगेंगी। यह उनके आकलन से परे था कि

दलित – जो वर्णव्यवस्था में सबसे नीचली कतारों में शुमार किए जाते हैं – जिन्हें हिन्दुत्व की परियोजना में धीरे धीरे जोड़ा गया था, यहां तक कि उनका एक तबका 2002 के गुजरात दंगों की अल्पसंख्यक विरोधी हिंसा में भी शामिल था, वह अलसुबह बग़ावत में उठ खड़े होंगे और गरिमामय जीवन की मांग करते हुए उन्हें चैलेंज देंगे। इतना ही नहीं वह अल्पसंख्यकों को भी अपने साथ जोड़ेंगे और इस तरह हिन्दुत्व की परियोजना की जड़ पर ही चोट पहुंचाएंगे।

जैसा कि इस स्थिति में उम्मीद की जाती है, जब दलितों का यह अप्रत्याशित उभार सामने आया तो उसकी क्या प्रतिक्रिया दी जाए, इसे लेकर वह बाकायदा बदहवासी तथा दिग्भ्रम का शिकार हुए। संघ परिवार के विभिन्न आनुषंगिक संगठनों या चेहरों से जितनी विभिन्न किस्म की आवाज़ें सुनाई दी, वह इसी का प्रतिबिम्बन था। इसमें कोई दोराय नहीं कि एक साथ कई आवाज़ों में बोलना हिन्दुत्व ब्रिगेड की आम रणनीति का हिस्सा रहा है, मगर इस बार मामला वहीं तक सीमित नहीं था। सबसे बड़ा सवाल उनके सामने यही उपस्थित था कि गाय की रक्षा के नाम पर जो 'परिवार' के एजेण्डे को आगे बढ़ा रहे थे, ऐसे हमलावरों की हिफाजत करें, और इस तरह पीड़ितों से अपनी दूरी कबूल करे या दूसरी तरफ पीड़ितों की हिमायत करे, हमलावरों की भर्त्सना करें तथा उन पर सख्त कार्रवाई की मांग करें तथा दलितों को अखिल हिन्दु एकता सूत्र में बनाए रखने की कवायद में जुटे रहें। इस विभ्रम का असर उनके द्वारा जारी वक्तव्यों में भी दिखाई दिया जो इस अवसर पर दिए गए। एक तरफ प्रधानमंत्री थे जिन्होंने इस घटना के लम्बे समय बाद अपनी चुप्पी तोड़ी और यहां तक कहा कि गोरक्षा के नाम पर अधिकतर असामाजिक तत्व सक्रिय हैं और बताया कि वह गृह मंत्रालय को सूचित करनेवाले हैं कि वह ऐसे तत्वों के बारे में दस्तावेज तैयार करें। प्रधानमंत्री मोदी के बरअक्स उनके पूर्वसहयोगी विश्व हिन्दू परिषद के लीडर भाई तोगडिया का रूख था, जिन्होंने गोरक्षकों पर लांछन लगाने की निन्दा की और ऐसी कार्रवाई को 'हिन्दू विरोधी' कहा। यह दिग्भ्रम समझ में आने लायक था।

दरअसल, ऊना की घटना के बहाने हाल के समयों में यह पहली बार देखने में आ रहा था कि हिन्दुत्व ब्रिगेड अगर अपने एक अहम एजेण्डा – जो गाय के इर्दगिर्द सिमटा है और जिसने उसे राजनीतिक विस्तार में काफी मदद पहुंचायी है – को आगे बढ़ाने की कोशिश करती है तो एक संभावना यह बनती है कि हिन्दु एकता कायम करने के उसके इरादों में दरारें आती हैं। /सुश्री विद्या सुब्रम्हण्यम अपने उत्तर प्रदेश की राजनीति पर केन्द्रित अपने एक आलेख में इस स्थिति को 'ए रिवर्स राम मंदिर मोमेन्ट' कहती हैं – देखें:

http://www.thehindu.com/opinion/lead/its-mayawati-versus-modi-in-up/article9022511.ece?

ref=topnavwidget&utm_ source= topnavdd&utm_medium=topnavdropdownwidget&utm_campaign=topnavdropdown / उन्मादी 'गोरक्षकों' के हमलों का शिकार दलितों के अलावा – जो 'परिवार' की राजनीति से ही तौबा कर रहे हैं – किसान आबादी का बड़ा हिस्सा भी गाय के इर्दगिर्द हो रही हिन्दुत्व की राजनीति से परेशान है क्योंकि वह अपने उन पशुओं को बेच पाने में असमर्थ है या उसे उन्हें बहुत कम कीमत पर बेचना पड़ रहा है – जो बूढ़े हो चुके हैं या जिन्होंने दूध देना बन्द कर दिया है। इतना ही नहीं मीट के व्यापार में लगे पंजाब के व्यापारियों ने पिछले दिनों प्रेस कान्फेरेन्स कर इन स्वयंभू गोरक्षकों की हिंसक कार्रवाइयों से अपने व्यवसाय में उन्हें उठाने पड़ रहे नुकसान को रेखांकित करते हुए प्रेस सम्मेलन किया। कहां धार्मिक हिन्दू गाय की पूछ के सहारो वैतरणी पार करने की बात करता है और अब यह आलम था कि हिन्दू धर्म एवं राजनीति के संमिश्रण के सहारे लोकतंत्र में अपनी जड़ ज़माने वाले लोगों के लिए गाय की वही पूछ उनके गले का फंदा बनती दिख रही है। हिन्दुत्व की मौजूदा स्थिति को सन्त तुलसीदास की चौपाई बखूबी बयां करती है 'भयल गति सांप छछुंदर जैसी ..'

'राष्ट्रवादी तो हमारे साथ हैं, हमें दलित और पिछड़े को साथ लाना है''

हर कोई जानता है कि गोरक्षा के नाम पर हिन्दुत्व के अतिवादियों द्वारा जो कार्रवाईयां होती रही हैं, जिसमें कुछ भी 'अटपटा' नहीं था, यहां तक कि मरी हुई गाय की खाल उतार रहे मोटा समधियाला गांव के दलितों को जिस तरह सरेआम पीटा गया और उसका विडिओ बना कर सोशल मीडिया पर शेअर किया गया, वह भी पहली बार नहीं हो रहा था।

हम याद कर सकते हैं ऐसे हमलों को जब भाजपा खुद केन्द्र में अपने बलबूते सत्ता में नहीं थी, उसे सहयोगी दलों के सहारे सरकार चलानी पड़ रही थी। इस मामले में क्लासिक उदाहरण दुलीना/झज्जर/ का है – जो जगह राष्ट्रीय राजधानी से बमुश्किल पचास किलोमीटर की दूरी पर स्थित है – जहां इसी तरह मरी हुई गाय की खाल निकाल रहे पांच दलितों को गोरक्षा के नाम पर जुटी उन्मादी भीड़ ने दुलीना पुलिस स्टेशन के सामने पीट पीट कर मार डाला था, जब इलाके के अग्रणी पुलिस एवं प्रशासकीय अफसर वहां मूकदर्शक बने थे।/2003/ इस बर्बर घटना

को लेकर एक अग्रणी हिन्दुत्ववादी नेता ने / जिनका कुछ समय पहले इन्तकाल़ हुआ/ एक विवादास्पद बयान देते हुए इसे औचित्य प्रदान किया था, उन्होंने कहा था कि 'पुराणों में इन्सान से ज्यादा गाय को मूल्यवान समझा जाता रहा है।' इन हत्याओं से आक्रोश अवश्य पैदा हुआ था, कुछ हमलावरों की गिरफताारियां भी हुई थीं, मगर जल्द ही वह मामला भुला दिया गया था। हमलावरों को जब जमानत मिली थी तब 'गोरक्षा के महान काम' के लिए उनका जबरदस्त स्वागत हुआ था।

दरअसल, हाल के वक्त़ में हुए ऐसे तमाम हमले अधिक बर्बर रहे हैं , फिर वह चाहे लातेहार, झारखण्ड के पास दो मुस्लिम युवा व्यापारियों की गोरक्षक समूह द्वारा पीट पीट कर की गयी हत्या हो; या उधमपुर के पास ट्रक में सो रहे एक युवा को ऐसे ही अतिवादी समूहों द्वारा पेट्रोल बम डाल कर जला डालने का मामला हो ; या पलवल, हरियाणा में मीट ले जा रहे ट्रक पर गोरक्षक समूहों द्वारा किया गया हमला हो तथा साम्प्रदायिक तनाव की स्थिति का निर्माण हो या गुड़गांव के पास दो ट्रान्सपोर्टर्स को गोमूत्र मिला कर गोबर खिलाने का मामला हो क्योंकि वह मवेशियों को एक स्थान से दूसरे स्थान ले जा रहे थे, इन हमलावरों का हौसला इस कदर बढ़ गया है कि वह न केवल हथियारों से लैस अपनी तस्वीरों को बाकायदा सोशल मीडिया पर प्रदर्शित करते हैं, यहां तक कि निरपराध लोगों पर किए जा रहे इन हमलों के भी विडिओ बना कर इंटरनेट पर डाल देते हैं और जहां तक कानून एवं व्यवस्था के रखवालों का सवाल है तो वह मूकदर्शक बने रहते हैं और कभी कभी पीड़ितों को ही 'गोरक्षा' के नाम पर बने कानूनों के प्रावधानों के तहत जेल भेज देते हैं।

यह अलग बात है कि मोटा समधियाला गांव में स्वयंभू गोरक्षकों द्वारा जिस हमले को अंजाम दिया गया और अपनी 'बहादुरी' को जो विडिओ सोशल मीडिया पर शेअर किया गया, वह एक टर्निंग पाइंट साबित हुआ है।

उना के बहाने उठे दलित विद्रोह ने दरअसल नफरत एवं असमावेश पर टिकी हिन्दुत्व की राजनीति का एक ऐसा रहस्य उजागर हुआ है, जिसे उसने बहुत मेहनत से 'छिपा कर' रखा था। मालूम हो कि अब एक साधारण व्यक्ति के लिए भी यह स्पष्ट हो चला है कि हिन्दुत्व – अपनी समरसता की जितनी भी बात करे – उसके लिए, दलित और अन्य हाशियाकृत तबके मनुष्य से कम दर्जा पर स्थित है ; जो एक तरह से उसके मनुवादी चिन्तन का ही विस्तार है। / एक क्षेपक के तौर पर यहां बताना समीचीन होगा कि आज़ादी के बाद जब संविधान निर्माण की प्रक्रिया चली थी तब उन दिनों न केवल राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ ने बल्कि हिन्दुत्व की राजनीति के पायोनियर कहे जानेवाले सावरकर ने उसका विरोध किया था और तर्क यह दिया था कि नए संविधान की जरूरत क्या है – हमारे पास मनुस्म्रति है ना !/ यहां एक और बात रेखांकित करना ज़रूरी है कि हिंदुत्व एवम हिंदूइस्म अर्थात हिन्दू धर्म में फर्क है, बकौल सावरकर हिंदुत्व राजनीतिक प्रोग्राम है तो हिंदूइस्म आस्था का मामला। इस पर विस्तार से चर्चा के लिए देखें उनकी रचना 'हिंदुत्व'.

अब यह एहसास गहरा रहा है कि हिन्दुत्व राजनीति की औपचारिक भंगिमाएं जो भी हों, जहां उसे धार्मिक कल्पितों/religious imaginaries / के विमर्श में प्रस्तुत किया जाता है – जहां अल्पसंख्यक, फिर भले वह मुसलमान हों या ईसाई हों – उन्हें 'अन्य' के तौर पर पेश किया जाता है, मगर सारत' हिन्दु राष्ट्र का विचार वर्चस्व एवं समरूपीकरण की ब्राहमणवादी परियोजना को ही वैधता प्रदान करता है। और ऐसे प्रोजेक्ट में दलितों के दोयम दर्जे पर तो धार्मिक मुहर भी लगी होती है। समरसता का गुणगान करनेवाले हिन्दुत्व के कर्णधारों की निगाह में दलितों एवं पिछड़ों की वास्तविक स्थिति क्या है इसे समझना हो तो हम जनाब मोदी की अपने पार्टी के चार सौ अग्रणी नेताओं के साथ चली बातचीत पर निगाह डाल सकते हैं। अखब़ारी रिपोर्टों में कहा गया कि उन्होंने यह कहा कि पार्टी को राष्ट्रवाद की बात करनी चाहिए जो 'भाजपा की विचारधारा के केन्द्र में है', मगर उनकी सबसे रेखांकित करनेवाली बात थी 'राष्ट्रवादी तो हमारे साथ हैं, हमें दलितों और पिछड़े को साथ लाना है।' (http://indianexpress.com/article/india/india-news-india/nationalists-are-with-us-lets-reach-out-to-dalits-backwards-pm-modi-to-party-2993281/)

क्या इसे महज जुबान फिसलना कहा जा सकता है या इस सच्चाई को अनजाने मे कबूल करना कि हिन्दुत्व की निगाह में राष्ट्र पर महज उंची जातियों का दावा बनता है और दलितों तथा पिछड़ों को – जो उसके दायरे के बाहर हैं – उन्हें इसमें शामिल करना पड़ता है।

http://scroll.in/article/814769/the-daily-fix-what-did-modi-mean-when-he-said-there-is-a-chasm-between-dalits-and-nationalists)

दलितों के महज वोटों की चिन्ता, मगर उनके वास्तविक दुख दर्दों से, परेशानी से बेरूखी और उन पर हो रहे अत्याचारों के प्रति तिरस्कार की भावना / फिलवक्त हम उन बॉलीवुडमार्का डायलॉग्ज की बात न करें तो अच्छा 'तुम

मुझे गोली मार दो, मगर मेरे दलित भाईयों को छोड़ दो'/ इस बात में भी प्रगट होती है कि जब दलित विद्रोह अपने चरम पर था, तब तेलंगाणा राज्य के भाजपा विधायक द्वारा दलितों को पीटे जाने की घटना को 'उचित' ठहरानेवाले बयान पर कार्रवाई करने की भी जरूरत भाजपा नेतृत्व ने महसूस नहीं की। उपरोक्त विधायक ने इस सम्बन्ध में एक विडियो बना कर अपने फेसबुक पर शेअर किया था, उसके शब्द थे ' जो दलित गाय को मांस को ले जा रहा था, जो उसकी पिटाई हुई है, वह बहुत अच्छी हुई है।'

(http://scroll.in/latest/812903/anyone-who-kills-cows-deserves-to-be-beaten-says-bjp-mla-raja-singh)

गुजरात मॉडल की बेपर्द होती असलियत

पिछले दिनों जिग्नेश मेवानी, जो 'उना दलित अत्याचार लड़त समिति' के कन्वेनर है, जो दलितों के इस ऐतिहासिक उभार की अगुआई कर रहा है, वह राष्टीय राजधानी दिल्ली में थे ताकि व्यापक लोगों के सामने आन्दोलन के सन्देश को सांझा किया जा सके और 'लड़त समिति' द्वारा 15 सितम्बर से दिए गए रेल रोको कार्यक्रम के प्रति लोगों का समर्थन जुटाया जा सके। अपने व्याख्यान में उन्होंने दलितों के इस संकल्प को रेखांकित किया कि अब वह दूसरों की गन्दगी, मल नहीं उठाएंगे और न ही मरे हुए पशुओं को उठाएंगे। उन्होंने बताया कि किस तरह अहमदाबाद की 31 जुलाई की रैली में बीस हजार से अधिक दलित जुटे थे और उन्होंने अब यह शपथ ली है कि आइन्दा वह उन कामों को नहीं करेंगे जो वर्णव्यवस्था ने उन्हें सौंपे हैं और जिसकी वजह से उन्हें लांछन झेलना पड़ता है। मुस्कराते हुए उन्होंने कहा

'हम दलित अब दूसरों की गंदगी साफ नहीं करनेवाले हैं। मोदीजी, अब आप का स्वागत है मल उठाने में आध्यात्मिकता का अनुभव करने के लिए।

http://www.telegraphindia.com/1160821/jsp/frontpage/story_103638.jsp#.V74anPl97IU)

एक्टिविस्ट और वकील जिग्नेश अपनी इस बात के जरिए 'कर्मयोग' नाम से संकलित मोदी के भाषणों के संकलन का उल्लेख कर रहे थे, जो भाषण उन्होंने प्रशिक्षु आईएएस अधिकारियों के सामने दिए थे तथा जिन्हें गुजरात की एक सार्वजनिक उद्यम ने छापा था, जिसमें उन्होंने कहा था कि सफाई अर्थात मल उठाने का काम वाल्मीकियों के लिए 'आध्यात्मिकता का अनुभव' प्रदान करता है। (See : https://kafila.org/2014/02/12/modi-and-the-art-of-disappearing-of-untouchability/)

आन्दोलन की विकासयात्रा की चर्चा करते हुए तथा इस बात का विश्लेषण प्रस्तुत करते हुए कि आखिर गाय के नाम पर आतंक मचानेवाले हिन्दुत्ववादी संगठनों के कार्यकर्ताओं द्वारा दलितों को पीटे जाने की घटना ने आखिर विद्रोह का रूप कैसे धारण किया, उन्होंने गुजरात मॉडल के तहत दलितों को झेलने पड़ रहे वंचना और भेदभाव से जुड़ी तमाम बातें रखीं। उनके मुताबिक

– गुजरात में दलितों पर अत्याचार की हजारों घटनाएं हर साल होती हैं

– जनाब मोदी के मुख्यमंत्रीपद के दिनों में /2001 से 2014/ अत्याचारों की घटनाओं में बढ़ोत्तरी जारी रही

– गुजरात में 55,000 से अधिक दलित हैं जो आज भी मल उठाने के काम में लगे हैं

– एक लाख से अधिक सैनिटेशन/सफाई कर्मचारी हैं जिन्हें न्यूनतम मजदूरी भी नहीं मिलती

– 119 गांव के दलितों को दबंग जातियों के अत्याचारों से बचने के लिए पुलिस सुरक्षा में रहना पड़ता है

– दलितों पर अत्याचार में दोषसिद्धी की दर महज तीन फीसदी है

उनके मुताबिक दलितों पर होने वाले अत्याचारों के मामलों में न्याय से इन्कार का हाल का उदाहरण है थानगढ़ में तीन दलितों का हत्याकाण्ड, जब दलितों को 'एके 47 राइफलों से भुन दिया गया था' जिन दिनों मुख्यमंत्री पद खुद मोदी संभाले हुए थे। गौरतलब था कि इस हत्याकाण्ड में न्याय दिलाने को लेकर एक लाख से अधिक दलितों तथा अन्य मित्रा शक्तियों ने प्रदर्शन किया, मगर सरकार की तरफ से अभियुक्त पुलिस कर्मी के खिलाफ कोई कार्रवाई नहीं हुई। /अब जब गुजरात के दलित विद्रोह के रास्ते पर हैं तो सुनने में आया है कि इन हत्याओं की जांच के लिए गुजरात सरकार ने स्पेशल इन्वेस्टिगेशन टीम के गठन का निर्णय लिया है और उसने पीड़ित परिवारों के लिए मुआवजे की राशि भी बढ़ा दी है।/

जब श्रोतासमूह में से किसी ने यह सवाल उठाया कि अगर आप दलितों के लिए जमीन की मांग कर रहे हैं तो क्या राज्य में इतनी जमीन उपलब्ध है तब जिग्नेश ने विभिन्न योजनाओं के तहत वंचित तबकों के लिए उपलब्ध जमीन का विवरण पेश किया और बताया कि किस तरह वर्चस्वशाली जातियां जगह जगह अनुसूचित तबकों के लिए लक्षित जमीनों पर कब्जा किए हुए हैं। जिग्नेश के मुताबिक भूदान आन्दोलन के दौरान सरकार को जो हजारों एकड़ जमीन मिली थी वह भी अभी तक वितरित नहीं की गयी है। उन्होंने एससी-एसटी सबप्लान के तहत पहले से मौजूद उस प्रावधान की भी चर्चा की कि 'अगर जमीन उपलब्ध न हो तो

जमीन खरीद कर भी उन्हें दी जा सकती है।' उनका आसान सवाल था, जो समूचे श्रोतासमूह को सोचने के लिए मजबूर किया कि 'आखिर विकास के नाम पर अगर हजारों एकड़ जमीन अंबानियों, अडानियों और टाटा को वितरित की जा सकती है तो फिर दलितों को उनके न्यायपूर्ण अधिकार से किस तरह वंचित किया जा सकता है।' जिग्नेश ने भूमि अधिग्रहण कानून के सन्दर्भ में राज्य सरकार द्वारा अंजाम दिए गए उन 'दमनकारी' तथा 'गैरलोकतांत्रिक' प्रावधानों की भी चर्चा की जिसके अन्तर्गत 'सहमति' के प्रावधान को हटा दिया गया है – जिसका मतलब यही होगा कि अगर सरकार 'विकास' के नाम पर कॉर्पोरेट समूहों को जमीन देना चाहें तो वह किसानों की जमीन 'पब्लिक गुडस' अर्थात जनकल्याण के लिए हस्तगत कर सकती है और कुछ प्रतीकात्मक मुआवजा देकर मामले को समाप्त मान सकती है।

अन्य सवाल यह उठा कि दलित अगर अपने 'पारम्पारिक पेशों' को छोड़ देंगे जो उन्हें 'आर्थिक सुरक्षा' प्रदान कर सकता है, तब जिग्नेश ने डा अंबेडकर को उदध्रत किया जिन्होंने ऐतिहासिक महाड सत्याग्रह के दिनों में /1927/ दलितों का आवाहन किया था कि वह 'लांछन लगे इन पेशों को छोड़ दें मगर गरिमामय जीवन हासिल करने से समझौता न करें, भले ही इसके लिए उन्हें 'भूख से मरने' के लिए तैयार रहना पड़े।

गुजरात माडलःदलित, आदिवासी और अन्य पिछड़ा वर्ग के भूमिहीनों को अतिरिक्त जमीन से इन्कार, पटेलों को ''मिली'' 12 लाख एकड़ जमीन

ष्ठ गुजरात में भूमिहीनों को अतिरिक्त जमीन बांटने के मामले में – जिसे 1960 के गुजरात एग्रिकल्चरल लेण्ड सीलिंग एक्ट के तहत जमींदारों से हासिल किया गया था – बहुत नाममात्र की प्रगति हुई है, इसके बारे में नए तथ्य सामने आए हैं। सूचना अधिकार कानून के तहत डाले गए आवेदनों के आधार पर, जुनागढ़ के भूमि रेकार्ड जिला रजिस्टार ने इस बात को स्वीकारा है कि 16 में से 11 गांवों को लेकर, जिनके बारे में सूचनाएं मांगी गयी थीं, 'वहां अतिरिक्त जमीन को लेकर विगत 24 सालों में कोई सर्वेक्षण नहीं किया गया', इसलिए वहां कोई जमीन आवंटित नहीं की गयी।

एक अन्य मामले में, नवसारी जिले में, गुजरात सरकार ने 2006 और 2008 के दरमियान, जबकि मोदी राज्य के मुख्यमंत्री थे, उसने 7,542 भूमिहीनों को जमीन 'आवंटित' की, मगर एक साल बाद उसने खुद स्वीकारा कि इनमें से 3,616 लोगों को अभी भूमि सम्बन्धी कागजात दिए जाने हैं। ''हालांकि, अब सूचना अधिकार के तहत डाली गयी याचिका के आधार पर, हम जानते हैं कि 2015 में भी चीजें बदली नहीं थीं।

'दलित अधिकार' नामक गुजराती पत्रिका में लिखे एक आलेख में जिग्नेश मेवानी कहते हैं कि ''हमारे पास प्राप्त सूचनाओं के आधार पर कहा जा सकता है कि गुजरात सरकार ने गुजरात एग्रिकल्चरल लेण्ड सीलिंग एक्ट, 1960 के अन्तर्गत 1,63, 808 एकड जमीन हासिल की और हमारा यह मानना है कि उनमें से अधिकतर महज कागज़ पर ही भूमिहीनों को बांटी गयी। भूमिहीन, मुख्यतः दलित, आदिवासी और अन्य पिछड़ा वर्ग से जुड़े लोगों को अभी भी जमीन पर वास्तविक हक नहीं मिल सका है।''

मेवानी लिखते हैं, ''जमीन जोतनेवाले की हो इस कानून का सबसे अधिक फायदा उंची जाति के पटेलों को हुआ है। लगभग 55 हजार पटेलों को 12 लाख जमीन बांटी गयी, जो गुजरात के सौराष्ट और कछ इलाकों में अतिरिक्त घोषित की गयी थी। लेकिन जहां तक दलित भूमिहीन क्रषकों का ताल्लुक है, उन्हें 12 इंच तक जमीन नहीं मिली। एक बेहद छोटा तबका, जो सत्ताधारी तबकों के करीब है, उसे ही लाभ हुआ है।''

मेवानी के मुताबिक ''आइए गुजरात सरकार के गुड गवर्नंस का एक नमूना देखते हैं। हम लोगों ने अलग अलग गांवों में आवंटित 6,500 एकड जमीन के बारे में तथ्य जानने के लिए 2011 से 2015 के दरमियान सूचना अधिकार कानून के तहत 65 आवेदन डाल। इसके बावजूद अधिकारी इस भूमिसंबंधी कागज़ातों की कापी देने से इन्कार कर रहे हैं जो दिखा सकें कि जमीन वास्तविक तौर पर भूमिहीनों को मिली।''

गुजरात स्थित मानवाधिकार संगठन 'जनसंघर्ष मंच' से सम्बद्ध मेवाणी कहते हैं ''कुल 1,63,808 एकड अतिरिक्त जमीन में से, लगभग 70 हजार एकड जमीन रेवेन्यू टिब्युनल, गुजरात उच्च अदालत और सर्वोच्च न्यायालय के साथ विवादों में अटकी है। अब इस जमीन का आवंटन नहीं किया जा सकता, मगर इस बात का जवाब तो ढूंढना ही पड़ेगा कि आखिर बाकी जमीन का आवंटन क्यों नहीं हुआ।''

दरअसल मेवाणी यह कहते हैं कि अतिरिक्त जमीन में से 15,519 एकड़ जमीन ऐसी है जिस पर कोई विवाद नहीं है' इसके बावजूद गुजरात सरकार 'इस पर कार्रवाई करने से इन्कार कर रही है।''

(http://www.milligazette.com/news/13251-gujarat-model-dalit-tribal-obc-landless-denied-

surplus-land-patels-received-12-lakh-acres) दलितों के साथ न्याय से लगातार इन्कार और सरकारी दावों और जमीनी स्तर की हकीकत के अंतराल की बातें राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग की पहले की रिपोर्टों में भी पुष्ट होती हैं। अगर हम वर्ष 2009 की रिपोर्ट पर सरसरी निगाह डालें तो पता चलता है कि देश में मानवाधिकार उल्लंघन के सामने आए 94,559 मामलों में से 3,813 मामले गुजरात से थे और इस तरह मानवाधिकार उल्लंघन के मामलों में गुजरात उत्तर प्रदेश और दिल्ली के बाद पूरे देश में तीसरे नम्बर पर था।

(Indian Express, 20 th March 2009).

अगर हम राज्य के सामाजिक न्याय विभाग द्वारा राज्य के मुख्य सचिव और कानूनी महकमे को सौंपी गयी 23 पेजी गोपनीय रिपोर्ट को देखें तो वह 'प्रीवेन्शन आफ एटरासिटीज एक्ट अगेन्स्ट एससी/एसटी के मातहत दर्ज मामलों को लेकर गडबडझाले की ओर इशारा करती है। /एक्स्प्रेस, 15 सितम्बर 2006/ प्रीवेन्शन आफ एटरासिटीज एक्ट के तहत दोषसिद्धी की दर महज 2.5 फीसदी है जबकि बेगुनाह साबित होने का प्रतिशत 97.5 फीसदी है।

इस रिपोर्ट में इस बात का विवरण पेश किया गया है कि किस तरह इस अधिनियम के तहत दर्ज मामलों की जांच पुलिस ठीक से नहीं करती और मुकदमे की कार्रवाई के दौरान पब्लिक प्रासिक्युटर प्रतिकूल/दलितविरोधी रूख अख्तियार करते हैं।

अधिनियम स्पष्ट करता है कि इसके तहत दर्ज मुकदमों को डीवायएसपी की नीचली रैंक के अफसर द्वारा जांच नहीं किया जा सकता, लेकिन ऐसे 4,000 से अधिक मामले पुलिस इन्स्पेक्टर या पुलिस सबइन्स्पेक्टर की तरफ से जांच किए गए।

कई मामलों में उत्पीड़क की बेदाग रिहाई क्योंकि पीड़ित की अनुसूचित जाति/जनजाति की पहचान का प्रमाणपत्रा नहीं जोड़ा गया। वजह, केस पेपर्स के साथ पीड़ित का जाति प्रमाणपत्रा नत्थी नहीं किया गया।

पब्लिक प्रॉसिक्यूटर द्वारा अदालत के सामने यह झूठा दावा कि इस अधिनियम को राज्य सरकार ने संशोधित किया है जबकि यह कानून केन्द्र सरकार ने बनाया है।

कई मामलों में अदालत द्वारा अभियुक्त को अग्रिम जमानत जबकि अधिनियम में इसका कोई प्रावधान नहीं है। गौरतलब है कि अनुसूचित जाति और जनजाति मामलों की संसदीय समिति ने सूबा गुजरात में अत्याचार के मामलों में अग्रिम जमानत देने के बारे में चिन्ता प्रगट की थी।

रेखांकित करनेवाली बात है कि कौन्सिल फार सोशल जस्टिस के सेक्रेटरी वालजीभाई पटेल द्वारा इस अधिनियम के तहत दिए गए 400 से अधिक फैसलों का विस्तृत और विधिवत अध्ययन /मार्च 2005, वर्ष 11, नंबर 106, http://www.sabrang.com / ने सरकार को उपरोल्लेखित 23 पेजी रिपोर्ट पर काम करने के लिए मजबूर किया था। यह रिपोर्ट बताती है कि किस तरह उच्च स्तर एवं निम्न स्तर की पुलिस तथा पब्लिक प्रासिक्युटर्स द्वारा अपनाया गया प्रतिकूल रूख इस अधिनियम के तहत दर्ज मामलों के बिखर जाने का प्रमुख कारण है। इस बात को नोट किया जाना चाहिए कि उन्होंने 1 अप्रैल 1995 के बाद राज्य के 16 विभिन्न जिलों में स्पेशल एटरासिटी कोर्ट द्वारा दिए गए फैसलों का विधिवत दस्तावेजीकरण किया था। यह अध्ययन इस दावे को भी बेपर्द करता है कि इस कानून की अक्षमता इसके तहत दर्ज फर्जी शिकायतों के चलते है, उल्टे यह कड़वी सच्चाई सामने लाता है कि राज्य की सहभागिता ने ही इस महत्वपूर्ण अधिनियम को प्रभावहीन बनाया है।

महाड से उना

20 मार्च 1927 को डा बाबासाहब अंबेडकर ने महाड के सार्वजनिक चवदार तालाब से पीने का पानी पीने के लिए चले सत्याग्रह की अगुआई की, यह एक तरह से दलित आंदोलन का 'बुनियादी किस्म का संघर्ष था जब पानी के लिए और जातिउन्मूलन के लिए लड़ाई छेड़ी गयी।

उस वक्त आन्दोलन के बारे में बोलते हुए डा अंबेडकर ने आंदोलन के उददेश्यों को अधिकतम व्यापक सन्दर्भों में रखा। उन्होंने पूछा कि हम क्यों लड़ रहे हैं, आखिर पीने का पानी हमें अधिक कुछ नहीं देगा। उनके मुताबिक यह कोई हमारे मानवाधिकार का भी मसला नहीं था, भले ही हम पीने के पानी के अधिकार को स्थापित करने के लिए यहां एकत्रित हुए हैं। हमारा लक्ष्य फ्रेंच इन्कलाब से कम नहीं है।..

और इस तरह दलित पीने के पानी के लिए महाड पहुंचे। वहां उंची जातियों के हिंदुओं ने उन पर जबरदस्त दमन किया। दलितों को पीछे हटना पड़ा, वह कुछ महिनों बाद दिसंबर 25 को फिर लौटे और चूंकि कलेक्टर ने उनके हाथों में वहां पहुंचने से रोकने का आदेश दिया था, तब डा अंबेडकर ने उनके आदेश का उल्लंघन न करने का निर्णय लिया और इसके बजाय मनुस्मृति जला दी। यह एक तरह से दलित मुक्ति के पहले संग्राम की उचित परिणिति थी।

(https://seekingbegumpura.wordpress.com/2013/03/22/the-mahad-satyagraha/)

गुजरात में दलित विद्रोह और जिस तरीके से उसने

राज्य सरकार को हिला दिया है और देश भर में दलितों के बीच अपने आधार को विस्तारित करने की भाजपा की सुचिंतित योजनाओं को फौरी तौर पर पलीता लगा दिया है, उसने एशिया के इस हिस्से के हर अमन एवं इन्साफपसंद व्यक्ति को उल्लसित कर दिया है।

जिस चीज़ ने लोगों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया है, वह है आन्दोलन का प्रमुख नारा जो कहता है कि 'गाय की दूम अपने पास रखो और हमें अपनी जमीन दो।' वह एक ऐसा नारा है जो जातिगत भेदभाव, साम्प्रदायिकता के सवाल को समाहित करता है, एक चतुष्पाद/जानवर के नाम पर लोगों के बीच ध्रुवीकरण तेज करने के उनके इरादों को चुनौती देता है और भौतिक वंचना – जो जाति के सोपानक्रम का अविभाज्य हिस्सा है – उसे लेकर सकारात्मक मांग पेश करता है। आन्दोलन का यह जोर कि दलित अपने 'लांछन लगे पेशों' को छोड़ दें – जिन्होंने उन्हें वर्ण/जाति के सोपानक्रम में सबसे नीचले पायदान पर रखा है – और हजारों हजार दलितों की उसमें सहभागिता, आन्दोलन का जुझारू तेवर आदि सभी ने दलित आन्दोलन में एक नयी जमीन तोड़ी है।

निःस्सन्देह आन्दोलन में बहुत कुछ स्वतःस्फूर्त रहा है, मगर जिस तरह आन्दोलन आगे बढ़ा है और जिस तरह उसने दलित दावेदारी को न केवल नयी धार प्रदान की है बल्कि हिन्दुराष्ट्र की अपनी प्रयोगशाला में उसके लिए चुनौती पेश की है, उसकी कल्पना आन्दोलन के युवा नेतृत्व के बिना नहीं की जा सकती। उनके समावेशी एप्रोच ने भी अन्य संगठनों के कार्यकर्ताओं को आन्दोलन के साथ जोड़ने में या ऐसे तमाम लोगों को साथ लाने में जो हिन्दुत्व की राजनीति से असहमत हैं, सहूलियत प्रदान की है। आन्दोलन का समावेशीपन इस बात में भी स्पष्ट था कि मुसलमान समुदाय – जो 2002 के दंगों के बाद सूबा गुजरात में न्याय से लगातार इन्कार के चलते तथा राज्य में बहुसंख्यकवाद के बढ़ते सामान्यीकरण के चलते एक तरह से दुर्दशा में तथा दोयम दर्जे की स्थिति में जी रहा है – वह भी उना की ओर निकली आज़ादी कूच में शामिल हुआ। न केवल सैकड़ों मुस्लिम उना में आयोजित रैली में पहुंचे बल्कि मुसलमान समुदाय ने रास्ते में जगह जगह रैली का स्वागत भी किया।

इस विद्रोह का कम चर्चित पहलू रहा है कि राज्य की आबादी में महज सात फीसदी होने के बावजूद – तथा विभिन्न जातियों में बंटे होने के बावजूद – तथा लड़ाकू आन्दोलन के इतिहास के अभाव के बावजूद, आन्दोलन ने जिन तारों को छेड़ा है, जिन मांगों को उठाया है, उसकी अनुगूंज दूर तक सुनायी दे रही है और सरकार के लिए आन्दोलन का दमन करना मुमकिन नहीं हो रहा है। यह आन्दोलन के जबरदस्त प्रभाव का ही परिणाम था कि भाजपा को अपने मुख्यमंत्री को बदलना पड़ा बल्कि दलितों तक पहुंचने के निर्धारित कार्यक्रम पर नए सिरेसे सोचना पड़ा। दबंग जातियों के जरिए जगह जगह दलितों पर हो रहे हमलों को लेकर अपनी सक्रियता न दिखा कर उसकी कोशिश यही है कि दलितों का मनोबल टूटे, इतनाही नहीं अपुष्ट समाचारों के अनुसार आन्दोलन के दौरान हुई हिंसा को लेकर वह तमाम दलितों पर मुकदमे कायम करने की तैयारी में है ताकि वह जनान्दोलनों में सक्रिय भूमिका निभाने के बजाय कोर्ट-कचहरी के ही चक्कर लगाते रहें।

अगर हम पचास के दशक में डा अंबेडकर के अभिन्न सहयोगी दादासाहब गायकवाड द्वारा जमीन के सवाल पर छेड़े गए ऐतिहासिक सत्याग्रह को छोड़ दें तो आजादी के बाद के दिनों में ऐसे अवसर बेहद कम आए है कि दलितों की भौतिक वंचना के सवाल को सामाजिक-सांस्क्रतिक भेदभाव एवं राजनीतिक हाशियाकरण के साथ जोड़ा जा सका है। उना ने इस परिद्रश्य को हमेशा के लिए बदला है। उसने कई ऐसे नारों को भी उछाला है, जो दलित आन्दोलन में लगाए नहीं जाते थे। उदाहरण के तौर पर 'दुनिया के दलित एक हों,' 'दुनिया के मजदूर एक हों', लाल सलाम और जय सावित्रीबाई। (https://www.youtube.com/watch?v=9jqgA75o5PE)

विश्लेषकों ने इस बात को सही समझा है कि हाल के समयों में दलित आन्दोलन 'अस्मिता' के मुददे तक ही सीमित रहा है? मगर उना ने इस मामले में एक नयी जमीन तोड़ी है जहां अब अस्तित्व का सवाल भी साथ जुड़ा है। जैसा कि इन्कलाबी आन्दोलन के एक कार्यकर्ता ने अपने ईमेल में लिखा 'उना संघर्ष के बारे में नोट करनेलायक बात यह है कि उसे हम एक ऐसे नैरन्तर्य (continuum) के तौर पर देख सकते हैं जो सामाजिक आन्दोलनों के सवाल को व्यवस्थाविरोधी संघर्ष के साथ जोड़ता है।'

निश्चित ही उना के आन्दोलन को – जिसने हिन्दुत्व वर्चस्ववादियों को काफी बेचैन कर दिया है – उसे देश में दलित उभार में आई तेजी का की अन्य घटनाओं, मुहिमों, आन्दोलनों की निरन्तरता में ही देखना होगा। यह साफ दिख रहा है कि वर्ष 2014 में जब से मोदी की अगुआई में सरकार बनी है तबसे दलितों के उभार की कई घटनाएं सामने आयी हैं और दिलचस्प यह है कि हर आनेवाली घटना अधिक जनसमर्थन जुटा सकी है। दरअसल यह एहसास धीरे धीरे गहरा गया है कि मौजूदा हुकूमत न केवल

सकारात्मक कार्रवाई वाले कार्यक्रमों /आरक्षण तथा अन्य तरीकों से उत्पीड़ितों को विशेष अवसर प्रदान करना/ पर आघात करना चाहती है बल्कि उसकी आर्थिक नीतियों – तथा उसके सामाजिक आर्थिक एजेण्डा के खतरनाक संश्रय ने दलितों एवं अन्य हाशियाक्रत समूहों/तबकों की विशाल आबादी पर कहर बरपा किया है। यह अधिकाधिक स्पष्ट होता जा रहा है कि हुकूमत में बैठे लोगों के लिए एक ऐसी दलित सियासत की दरकार है, जो उनके इशारों पर चले। वह भले ही अपने आप को डा अंबेडकर का सच्चा वारिस साबित करने की कवायद करते फिरें, लेकिन सच्चाई यही है कि उन्हें असली अंबेडकर नहीं बल्कि उनके साफसुथराकृत संस्करण की आवश्यकता है। वह वास्तविक अंबेडकर से तथा उनके रैडिकल विचारों से किस कदर डरते हैं यह गुजरात की पूर्वमुख्यमंत्री आनंदीबेन पटेल के दिनों के एक निर्णय से समझा जा सकता है जिसने किसी विद्वान से सम्पर्क करके लिखवाये अंबेडकर चरित्रा की चार लाख प्रतियां कबाड़ में डाल दीं, वजह थी कि उस विद्वान ने किताब के अन्त में उन 22 प्रतिज्ञाओं को भी शामिल किया जो डा अंबेडकर ने 1956 में धर्मांतरण के वक्त अपने अनुयायियों के साथ ली थीं।

और शायद इसी एहसास ने जबरदस्त प्रतिक्रिया को जन्म दिया है। और अब यही संकेत मिल रहे हैं कि यह कारवां रूकनेवाला नहीं है।

चाहे चेन्नई आई आई टी में अंबेडकर पेरियार स्टडी सर्कल पर पाबंदी के खिलाफ चली कामयाब मुहिम हो (https://kafila.org/2015/06/05/no-to-ambedkar-periyar-in-modern-day-agraharam/) हैद्राबाद सेन्टल युनिवर्सिटी के मेधावी छात्रा एवं अंबेडकर स्टुडेंट एसोसिएशन के कार्यकर्ता रोहिथ वेमुल्ला की 'सांस्थानिक हत्या' के खिलाफ देश भर में उठा छात्रा युवा आन्दोलन हो (https://kafila.org/2016/01/22/long-live-the-legacy-of-comrade-vemula-rohith-chakravarthy-statement-by-new-socialist-initiative-nsi/) या महाराष्ट्र में सत्तासीन भाजपा सरकार द्वारा अंबेडकर भवन को गिराये जाने के खिलाफ हुए जबरदस्त प्रदर्शन हों या इन्कलाबी वाम के संगठनों की पहल पर पंजाब में दलितों द्वारा हाथ में ली गयी 'जमीन प्राप्ति आन्दोलन' हो – जहां जगह जगह दलित अपने जमीन के छोटे छोटे टुकड़ों को लेकर सामूहिक खेती के प्रयोग भी करते दिखे हैं, यही बात समझ में आती है कि दलित दावेदारी की तीव्रता बढ़ रही है और उसका लड़ाकूपन तथा व्यापकता में नयी तेजी आयी है।

पंजाब में पंचायत की 1,58,000 एकड पंचायत जमीन में से दलितों का हिस्सा महज 52,667 एकड़ का है। नजूल जमीनों के तहत भी उन्हें कानूनी हक मिला है, मगर इन तमाम जमीनों पर वास्तविक कब्जा भूस्वामियों और धनी किसानों का है। 2010-11 के क्रषि जनगणना को देखें तो पंजाब में अनुसूचित जाति के लोग, जो आबादी का तीसरा हिस्सा हैं, उनके पास भूमि का महज 6.02 फीसदी हिस्सा था और राज्य की भूमिक्षेत्रा का महज 3.2 फीसदी था।

वर्ष 2014 के बाद से दलित किसान जमीन प्राप्ति संघर्ष समिति के बैनर तले संगठित हुए हैं और उन्होंने लाल झंडा लेकर जो उनकी अपनी जमीन है, उस पर हक जताना शुरू किया है। इन जमीनों को भूस्वामियों के पिटठु उम्मीदवारों का नीलाम किया जाता था ; उदाहरण के लिए संगरूर जिले में एक गोशाला को तीस साल तक के लिए सात हजार रूपया प्रति एकड़ के हिसाब से तीस साल के लिए अकाली दल-भाजपा सरकार द्वारा जमीन आवंटित की गयी है जबकि दलितों के लिए यही कीमत 20,000 रूपए से अधिक बतायी जाती है। दक्षिण पंजाब के जिलों में फैलते इस संघर्ष को पुलिस एवं भूस्वामियों के दमन का सामना करना पड़ा है, उनके खिलाफ फर्जी एफआईआर दर्ज हुई हैं, मगर संघर्ष तेजी से फैल रहा है।

(https://nbsdelhi.wordpress.com/2016/08/24/hail-the-assertion-by-landless-dalits-of-punjab-and-gujarat-of-their-right-to-land-land-to-the-tiller-key-to-annihilating-caste/)

अगर दलित अवाम के अच्छे खासे हिस्से का भाजपा की तरफ – विभिन्न कारणों से – अनपेक्षित झुकाव एक तरह से 2014 में उनकी चुनावी जीत में एक महत्वपूर्ण कारक था, अब दलितों की बढ़ती दावेदारी इसी बात का प्रमाण है कि अब उन्हें और बेवकूफ नहीं बनाया जा सकता। हिन्दुत्व वर्चस्ववादियों के वास्तविक एजेण्डा की परतें खुलते जाने से – जो न केवल इस बात में प्रगट हो रहा है कि शोषितों एवं हाशिये में पड़े समुदायों के जीवन एवं जीवनयापन के अधिकारों पर संगठित हमला हो रहा है बल्कि उनकी इस बौखलाहट में भी सामने आ रहा है कि वह डा अंबेडकर को अपने असमावेशी एजेण्डा के 'प्रातःस्मरणीयों' में शामिल करना चाहते हैं मगर दलित दावेदारी के हर तत्व को कुचल देना चाहते हैं – दोनों ओर सीमारेखाएं खींच गयी हैं।

उना के बहाने सामने आए दलित विद्रोह ने इस संघर्ष की रौनक और बढ़ा दी है।

फसल बीमा योजना, किसानों के साथ छलावा

विवेकानन्द माथने

आज का आसमानी संकट मनुष्य के प्रकृति से छेडछाड़ का परिणाम है। वैश्विक तापमान वृद्धि, जलवायु परिवर्तन औद्योगिक सभ्यता की देन है। विकास की अंधी होड़ का विनाशकारी परिणाम है। जिसके कारण सूखा, बाढ़ जैसे प्राकृतिक आपदा की मार अब किसानों को हर साल झेलनी पड़ रही है। अनियमित वर्षा व पर्यावरण असंतुलन के कारण देश के अनेक हिस्सों में कृषि और किसानों को लगातार नुकसान उठाना पड़ रहा है, जिसके लिए किसी भी स्थिति में किसान जिम्मेदार नही है।

जब देश में किसान की स्थिति अत्यंत कठिन है, पूरा किसान समुदाय मृत्युशय्या पर पड़ा है। ऐसी स्थिति में सरकार की जिम्मेदारी है कि प्राकृतिक आपदाओं में किसानों को नुकसान भरपाई दे और उसके लिए एक स्थायी व्यवस्था स्थापन करे। लेकिन सरकार अपने दायित्व का निर्वाह नही करना चाहती। बल्कि उन्होने एक ऐसी व्यवस्था बनाई है, जिसमें देशभर के कर्ज के बोझ में दबे ऋणी किसानों से ही रकम जुटाकर आपदग्रस्त किसानों को नुकसान भरपाई दी जाती है और किसानों को दी जानेवाली सब्सिडी का लाभ किसानों को नही कम्पनियों को ही मिलता है।

भारत सरकार ने प्राकृतिक आपदाओं से किसानों को होने वाले नुकसान की भरपाई के लिए पहले की बीमा योजनाओं में थोड़ा बहुत बदलाव करके प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना शुरु की है। वास्तविकता बीमा एक ऐसी तकनीक है, जिसमें बहुत से लोंगों द्वारा छोटी राशियों को जमा करके एक व्यक्ति के नुकसान की भरपाई की जाती है। फसल बीमा योजना भी इसी तकनीक पर आधारित है। जिसका उद्देश्य लोगों से इकट्ठा की गयी बड़ी राशि कम्पनी के कर्मचारियों के स्पर्धात्मक वेतन और प्रबंधन पर खर्च कर मुनाफा भागधारकों को बाँटना है।

प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना देश के सभी किसानों के लिए, सभी फसलों के लिए है। यह योजना बैंक से कर्ज लेने वाले ऋणी किसान और किसान क्रेडिट कार्ड धारक किसानों के लिए अनिवार्य की गयी है। किसानों की मजबूरी का लाभ उठाकर देश के करोड़ो ऋणी किसान और किसान क्रेडिट कार्ड धारक किसानों से हर साल उनकी सहमति के बिना फसल बीमा की प्रीमियम राशि उनके बैंक खाते से काट लेगी। किसानों को खरीफ फसलों के लिए 2 प्रतिशत, रबी फसलों के लिए 1.5 प्रतिशत और वार्षिक/बागवानी फसलों के लिए 5 प्रतिशत प्रीमियम का भुगतान करना होगा। बाकी प्रीमियम राशि राज्य तथा केंद्र सरकार द्वारा समान हिस्सों में सब्सिडी के रूप में कम्पनियों को देगी।

कड़े नियम व शर्तों की बाधाएँ पार कर किसानों को प्राकृतिक आपदाओं, सूखा, बाढ़, बारिश, कीट या बीमारी आदि प्राकृतिक कारणों से नुकसान सिद्ध होने के बाद हानि के अनुपात के आधार पर बीमा कम्पनी थोड़े किसानों को नुकसान भरपाई देगी। यह नुकसान भरपाई किसान से प्राप्त प्रीमियम और सरकारी कृषि बजट से दी जायेगी। आजतक सरकारी सब्सिडी व नुकसान भरपाई के लिए एक साल में केंद्र और राज्य सरकार द्वारा मिलकर कम्पनियों को 5000 हजार करोड़ रुपयों तक राशि दी गयी है। आज तक इसका लाभ कम्पनियों को ही मिला है। बजट के अतिरिक्त निधि दूसरी कृषि योजनाओं में कटौती कर दी जाती है। यहाँ यह समझना होगा कि, कृषि प्रधान भारत में जहाँ आधे से ज्यादा लोग खेती करते हैं, केंद्र सरकार ने इस वर्ष के बजट में कृषि के लिए केवल 35984 करोड़ रुपये आवण्टित किये हैं, जिसे वह कृषि समर्पित बजट कहते हैं वह देश के कुल बजट के 2 प्रतिशत से भी कम है। जो ऊँट के मुँह में जीरा जैसी बात है। उसमें से 5500 करोड़ रुपये प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना के लिए रखे हैं।

पिछले कई वर्षों से देश में चल रही विभिन्न फसल बीमा योजनाओं के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि आजतक कम्पनियों ने किसानों को दी नुकसान भरपाई किसानों से जुटाई गयी कुल प्रीमियम से कम है।

राष्ट्रीय कृषि बीमा योजना के अनुसार खरीफ 2007 से खरीफ 2014 तक 8 साल में 15 सीज़न के लिए किसानों ने 8083.45 करोड़ रुपये प्रीमियम और सरकारी सब्सिडी 1132.68 करोड़ रुपये मिलाकर 9216.13 करोड़ रुपये कम्पनी को दिये। कुल बीमाधारी किसानों में से 27.52 प्रतिशत किसानों को 27146.78 करोड़ रुपये नुकसान भरपाई दी गयी। जिसमें कम्पनीयों ने केवल 7232.26 करोड़ रुपये दिये है। बाकी रकम 19914.51 करोड़ रुपये नुकसान भरपाई सरकार व्दारा दी गयी। यहाँ नुकसान भरपाई का दायित्व कम्पनी और

सरकार का रहा है।

मौसम आधारित फसल बीमा योजना के अनुसार खरीफ 2007 से खरीफ 2014 तक 14 सिझन के किसानों ने 5950.344 करोड रुपये प्रीमियम और सरकारी सब्सिडी 3948.405 करोड़ रुपये मिलाकर 9898.749 करोड़ रुपये कम्पनी को दिये। कुल बीमा धारी किसानों में से 55.67 प्रतिशत किसानों को 4078.835 नुकसान भरपाई दी गया। यहाँ दायित्व केवल बीमा कम्पनियों का है।

संशोधित राष्ट्रीय कृषि बीमा योजना के अनुसार रबी 2010 से खरीफ 2014 तक सीज़न के लिए किसानों ने 2363.40 करोड़ रुपये प्रीमियम और सरकारी सब्सिडी 1444.01 करोड़ रुपये मिलाकर 3807.41 करोड़ रुपये कम्पनी को दिये। कुल बीमा धारी किसानों में से 17.11 प्रतिशत किसानों को 1719.49 नुकसान भरपाई दी गयी। यहाँ दायित्व केवल बीमा कम्पनियों का है।

उपरोक्त तीनों उदाहरणों से स्पष्ट होता है की, जहाँ नुकसान भरपाई का दायित्व केवल कम्पनियों का है, वहाँ नुकसान भरपाई देशभर के किसानों से प्राप्त प्रीमियम से कम दी गयी है। जहाँ दायित्व कम्पनी और सरकार को मिलकर पूरा करना है, वहाँ नुकसान भरपाई में कम्पनी का हिस्सा किसान के प्रीमियम से कम ही है। सरकार द्वारा किसानों के लिए दी गयी सब्सिडी का सारा लाभ कम्पनियों को ही मिला है। सरकार द्वारा जारी पर्चे में भी फसल बीमा योजना की असफलता की पुष्टि की गयी है। जिसमें कहा गया है कि राष्ट्रीय कृषि बीमा योजना और संशोधित राष्ट्रीय कृषि बीमा योजना योजनाओं में किसान को अधिक प्रीमियम देने के बावजूद नुकसान का सही मुआवजा नही मिल पा रहा था इसलिए इसे बंद कर इनकी जगह प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना शुरु की जा रही है।

आजतक बीमा योजना पब्लिक सेक्टर और भारतीय कम्पनियों द्वारा चलाई जाती थी। पब्लिक सेक्टर यह दावा करती रही है कि कम्पनी को मिलने वाला मुनाफा सरकार की तिजोरी में जमा किया जाता है, जिसकी पड़ताल जरुरी है। लेकिन अब कृषि और बीमा क्षेत्र में विदेशी निवेश के लिए पूरी छूट देकर बहुराष्ट्रीय कम्पनियों को प्रवेश दिया गया है। एग्रीकल्चर इंश्योरेंस कपनी लिमिटेड के अतिरिक्त दस देशी विदेशी निजी बहुराष्ट्रीय बीमा कंपनियों को प्रधानमंत्री फसल बीमा योजाना में प्रवेश दिया गया है। पीएमएफबीवाई के कार्यान्वयन में शामिल सेवाओं को सेवा कर से मुक्त रखा गया है।

देश में चल रही पुरानी योजना हो या नयी योजना दोनों में कोई गुणात्मक फरक नही है। किसान प्रीमियम थोड़ा कम किया गया है लेकिन कुल प्रीमियम राशि दुगनी करने से सरकारी तिजोरी से कम्पनियों को दुगनी प्रीमियम सब्सिडी देनी होगी अर्थात कृषि बजट से बीमा कम्पनियों को लाभ पहुंचाया गया है। जब किसानों से प्राप्त कुल प्रीमियम भी कम्पनियाँ किसानों को नही लौटा रही हैं और यह स्पष्ट है कि कम्पनी व्यवस्था में वह कभी नही लौटा पायेंगी। जहाँ कम्पनियों का लाभ और किसानों का हित एक दूसरे के विरुद्ध खड़ा है। तब सवाल उठता है कि किसानों को नुकसान भरपाई देने के लिए सरकार और किसानों के बीच बीमा कम्पनियों को क्यों लाया गया है?

सरकार अपनी तरफ से किसानों को कोई मदद नहीं करना चाहती। बीमा योजना द्वारा वह ऋणग्रस्त किसानों से ही राशि जुटाकर प्राकृतिक आपदाओं से प्रभावित किसानों को नुकसान भरपाई दे रही है। कृषि बजट से किसानों का हक छीनकर सरकारी सब्सिडी से बीमा कम्पनियों को लाभ पहुंचा रही है। प्राकृतिक आपदाओं की स्थिति में कर्ज चुकाने में असमर्थ ऋणी किसानों का ऋण बैंको को लौटाने की यह एक स्थायी व्यवस्था है। प्राकृतिक आपदाओं के समय जब किसान कर्ज चुकाने में असमर्थ होगा तब किसान चाहे कितना भी संकट में क्यों न हो, बीमा कम्पनी से मिलने वाली नुकसान भरपाई से बैंक को ब्याज और कर्ज वापस मिलता रहेगा। साथ ही निजी बीमा कम्पनियां किसानों को नवीन और आधुनिक कृषि पद्धतियों को अपनाकर ठेका खेती, कॉरपोरेट खेती को बढ़ावा देने के लिए उनके द्वारा प्रमाणित कम्पनियों की वस्तुओं को खरीदने के लिए बाध्य करेंगी तथा शर्तें लगाकर पारम्पारिक बीज, खाद, कीटनाशकों के उपयोग पर निर्बंध लगायेंगी। किसानों का हक छीनकर उनका शोषण करके विदेशी निवेश बढ़ाना और कुछ रोजगार पैदा करना किसानों के प्रति अन्याय है।

यह अत्यंत दुखद है कि, सरकार ने किसानों को नुकसान भरपाई देने के बजाय और लूटने की व्यवस्था बनाई है, यह योजना किसानों का शोषण करके बैंकों, बीमा कम्पनीयों और कृषि व्यापार करने वाली बहुराष्ट्रीय कम्पनियों को लाभ पहुंचाने के लिए लाई गयी है। यह देश के बदहाल किसानों की कार्पोरेटी लूट की एक नयी व्यवस्था है। जो लोग यह दावा करते हैं कि प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना किसानों के लिए तोहफा है, जो किसानों के जीवन मे परिवर्तन लायेगी। वह कम्पनियों के एजेण्ट की भूमिका निभा रहे हैं। प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना किसानों के लिए अन्यायपूर्ण है, किसानों के साथ धोखा है, एक छलावा है। *(पीएनएन)*

भविष्यवाणी जो सुनी नहीं गई

कपिल भट्टाचार्य

श्री कपिल भट्टाचार्य एक विलक्षण इंजीनियर थे। उन्होंने फरक्का बैराज के निर्माण पूरा होने और दामोदर परियोजना के पूर्ण क्रियान्वयन के पहले ही इनका विरोध किया था। उस समय ज्यादातर वैज्ञानिक इंजीनियर और बुद्धिजीवी इनके पक्ष में थे इस विरोध के कारण उनकी नौकरी भी छूट गई। उपेक्षा और एकांत में सन् 1989 में उनका निधन हुआ। करीब 50 वर्ष पहले लिखे उनके लेख को इस वर्ष उत्तरप्रदेश और बिहार में आई बाढ़ से मिलाकर देखे तो उनके द्वारा दी गई सीख का न मानना अंदर तक सिहरन पैदा कर देता है।-का.सं.

दामोदर घाटी परियोजना को बने हुए अनेक वर्ष बीत चुके हैं। जिस समय यह परियोजना बन रही थी, उसी समय मैंने इसके दोषों और इससे होने वाले भयंकर परिणाम की जानकारी सबके सामने रखी थी। इसके कारण पश्चिम बंगाल के पानी को निकालने वाली मुख्य नदी हुगली भी जाएगी और फिर देश में भयानक बाढ़ आएगी। हुगली नदी भरने से कलकत्ता बंदरगाह में आने वाले बड़े समुद्री जहाजों का आना भी संभव नहीं हो सकेगा। मेरे दृढ़ प्रतिवाद और चेतावनी के बावजूद केन्द्र की तत्कालीन कांग्रेसी और राज्य सरकारों ने मिलजुल कर दामोदार घाटी परियोजना को लागू किया।

दामोदार नदी में साल भर छोटी-छोटी बाढ़ों के कारण जो उपजाऊ मिट्टी जमा होती है, उसे आषाढ़ में आने वाली बड़ी बाढ़ बहाकर समुद्र में पहुंचा देती है। सावन, भादों और अश्विन महीने में हुगली के निचले हिस्से में भाटा की गति जितनी तेज होती है, उतनी तेज ज्वार की गति नहीं होती। इसका कारण समुद्र से आने वाली रेत नदी के मुहाने पर जमा होती है और इस रेत को भी दामोदर और रूपनारायण नदी में आने वाली बाढ़ बहा देती है। मैंने उस समय चेतावनी दी थी कि अगर इस स्वाभाविक प्रक्रिया में बाधा पहुंचाने की कोशिश की गई तो दामोदर और रूपनारायण नदी की बाढ़ की गति धीमी पड़ जाएगी, जिससे नदी के मुहाने पर जमने वाली मिटटी साफ नहीं हो पाएगी और जगह-जगह नदी में टापू निकल आएंगे। सन् 1948 से 1952 तक लगातार मैं इस सच्चाई से सरकार और देशवासियों को अवगत कराता रहा, लेकिन सरकार और परियोजना के प्रबंधकों ने मेरे तर्कों को न काटा और न इनका कोई संतोषप्रद उतर ही दिया। अपनी झूठी प्रतिष्ठा को बनाए रखने के लिए उन लोगों ने इस परियोजना को लागू किया।

पंचैत और मैथन के बांध बनने के तुरंत बाद ही मेरी बात सच निकली और सन् 1956 में ही कलकत्ता बंदरगाह की गहराई भयंकर रूप से घट गई। पश्चिम बंगाल के भागीरथी और हुगली के मैदान और दामोदर नदी के निचले हिस्सों में भयानक बाढ़ आई। दामोदर घाटी परियोजना बनने से पहले द्वितीय महायुद्ध के समय दामोदर की बाढ़ से मात्र 50 वर्ग मील जलप्लावित होता था। सन् 1956 के इस जलप्रलय में पश्चिम बंगाल का एक तिहाई हिस्सा यानी 10930 वर्ग मील क्षेत्र बाढ़ के विनाश से प्रभावित हुआ। सन् 1956 की बाढ़ के समय यह देखा गया था कि भागीरथी और हुगली नदी की सर्वोच्च जल-निकासी क्षमता काफी घट चुकी थी। ऐसा दामोदर घाटी परियोजना की वजह से हुआ था। इसके अलावा जलोशी, चुरनी, मयुराक्षी, अजय, दामोदर नदी की जल निकासी क्षमता 50 हजार क्यूसेक थी। सन् 1959 में देखा गया कि यह क्षमता घटकर 20 हजार क्यूसेक रह गई है। इस तरह पहले जो बाढ़ दो-तीन दिन या सप्ताह तक चलती थी, वह अब महीने से भी अधिक समय तक रहने लगी थी। फिर सन् 1970-71 में देखा गया कि बाढ़ और अधिक दिनों तक रुकी रही, इस कारण बहुत बड़ा क्षेत्र जल भराव का शिकार बना रहा।

दामोदर घाटी परियोजना के खिलाफ जो बातें सामने रखी गई थीं, बाढ़ के दिनों में इसे नकारा नहीं जा सका। सन् 1960 में बड़े-बड़े समुद्री जहाजों के यातायात के लिए कलकता से 60 मील दक्षिण हल्दिया में एक नए बंदरगाह की नींव रखी गई और यह तय किया गया कि फरक्का के निकट गंगा में एक बैराज बांध बनाकर एक नहर की सहायता से भागीरथी में कुछ जल प्रवेश कराया जाएगा। तब मैंने सुझाया था कि दामोदर घाटी परियोजना में ही कुछ सुधार कर उसकी सिंचाई परियोजना को छोड़कर उसी पानी को नियमित रूप से रूपनारायण नदी के माध्यम से निम्न हुगली में प्रवेश कराया जाए। मगर झूठी मर्यादा की रक्षा के लिए इस प्रस्ताव को स्वीकार नहीं किया गया। परिणामस्वरूप दामोदर घाटी परियोजना एक धोखा साबित हुई। बाद में मेरे द्वारा सुझाई गई वैकल्पिक सिंचाई पद्धति

लिफ्ट इरीगेशन को ही अपनाना पड़ा।

हम लोगों ने तब यह भी कहा था कि फरक्का बांध बनने के बाद परिस्थिति और भी जटिल होगी। पहली बात तो यह है कि सूखे महीनों में फरक्का से भागीरथी को 40 हजार क्यूसेक पानी की जो आवश्यकता है, वह कभी पूरी नहीं हो पाएगी। 50 के दशक में मैं हावड़ा में पीपुल्स इंजीनियरिंग नामक एक कारखाने में इंजीनियर था। उसमें जहाज का निर्माण और मरम्मत का काम होता था। रेल्वे के फेरी जहाजों के मरम्मत का काम मेरे जिम्मे था। इन जहाजों के नाविकों की सहायता से ही गंगा के जल प्रवाह को गर्मी के दिन में साहेबगंज और मनिहारी के पास नापा गया था। यहां गंगा में जल प्रवाह की जानकारी अधिकारियों को थी। बावजूद इसके वे लोग फरक्का बैराज परियोजना के माध्यम से भागीरथी में 60 हजार क्यूसेक जल प्रवेश कराने की बात प्रचारित करने लगे। ये अधिकारीगण बड़ी चतुराई से बाद में यह कहने लगे कि चूंकि गंगा की सहायक नदियों का पानी उत्तर प्रदेश और बिहार की सिंचाई में खर्च किया जा रहा है, इस कारण भागीरथी को 40 क्यूसेक का जल प्रवाह मिलना संभव नहीं होगा। फरक्का बैराज परियोजना में सौ करोड़ से अधिक रुपए खर्च करने के बाद इसके अवकाश प्राप्त अभियंता कहने लगे हैं कि फरक्का परियोजना असफल होगी। मैंने तो फरक्का परियोजना के प्रस्ताव के समय ही इसकी असफलता की घोषणा की थी। उस समय पश्चिमी बंगाल के कांग्रेसी नेताओं ने जनमत को भ्रमित कर फरक्का परियोजना के लिए केंद्र सरकार पर दबाव डाला था। विरोधी दलों के कुछ लोगों ने मेरी बातों का सम्मान जरूर किया था, लेकिन परियोजना के समर्थन में वे सरकार के ही साथ रहे। उस समय के एक समाचार पत्र के संपादकीय में मुझे पाकिस्तानी गुप्तचर घोषित किया गया था। इसके लिए निम्नलिखित कारण गिनाए गए थे।

फील्ड मार्शल अयूब खां ने मेरी किताब (जिसमें फरक्का बांध के प्रस्ताव का विरोध बिलकुल वैज्ञानिक तर्कों के आधार पर किया गया था।) खरीदकर तत्कालीन प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू के पास भेजी थी। (नोटः तब बंग्लादेश पाकिस्तान का हिस्सा था और पूर्वी पाकिस्तान कहलाता था।- संपादक) पश्चिम बंगाल सरकार ने मेरे पीछे सी.आई.डी. लगा दी थी और अंततः 1962 में मुझे पीपुल्स इंजीनियरिंग की नौकरी छोड़ देनी पड़ी थी।

मेरा तर्क था कि पद्मा नदी में ज्वार-भाटा होता है। अतः फरक्का नदी बैराज द्वारा सूखे के दिनों में गंगा का प्रवाह अवरुद्ध होने पर ज्वार द्वारा लाई गई मिट्टी से पद्मा नदी का प्रवाह इसलिए बदल जाएगा, क्योंकि ज्वार की मिट्टी उस नदी को भर देगी। बाद में ब्रह्मपुत्र नदी की बाढ़ भी पद्मा की उजान में बहकर भैरवमाथा, गंगा, जलंगी, चुरनी, इच्छामति आदि नदियों के माध्यम से पश्चिम बंगाल में बाढ़ लाएगी। सन् 1971-72 में सचमुच में फरक्का बांध का निर्माण होते ही पूर्व आशंका के अनुरूप बाढ़ आई। फरक्का बांध के कारण राजशाही और हार्डिंग पुल के मध्यव ती इलाके में आने वाले 5-7 वर्षों में भयानक स्थिति होगी तथा भविष्य में कलकत्ता तक जलमग्न हो सकता है। मेरी यह शंका तर्कसंगत थी और इस शंका की ओर लोगों का ध्यान आकृष्ट किया गया, लेकिन सरकारी अधिकारियों के कानों पर जूं तक नहीं रेंगी।

मेरी सबसे बड़ी आपत्ति यह थी कि बैराज का तलहट कंकरीट का होगा। इसलिए सूखे दिनों में गंगा की धारा तलहट से नीचे बहेगी। इस कारण बाढ़ के समय गंगा का जल प्रवाह जो गंगा के तल को 50 फीट से 150 फीट तक गहरा कर देता था, अब संभव नहीं होगा। इस कारण गंगा के जल प्रवाह की क्षमता में अत्यधिक कमी आएगी। मोकामा को राजेन्द्र पुल के पास गंगा का सर्वोच्च जल प्रवाह तीस लाख क्यूसेक मापा गया था। किंतु फरक्का परियोजना में उसे घटाकर सत्ताईस लाख क्यूसेक किया गया। मेरे साधारण हिसाब के मुताबिक जब कोसी जैसी बहुत बड़ी सहायक नदी फरक्का में मिलती है तब इसमें कम से कम 40 लाख क्यूसेक जल प्रवाह की व्यवस्था होनी चाहिए थी। मगर वास्तविकता तो यह है कि अब इसके अनुरूप व्यवस्था संभव नहीं है।

तब फिर गंगा का यह अतिरिक्त जल कहां जाएगा? मुझे समझने में देर नहीं लगी। इस पानी से मालदह और मुर्शिदाबाद जिले में हर साल बाढ़ की तबाही होगी। पटना, बरौनी, उत्तर मुंगेर, भागलपुर और पूर्णियां जिले भी हर साल डूबेंगे। गंगा की खाई क्रमशः भरती जाएगी, बैराज के पानी के प्रवाह की गति धीमी होगी और साद बैराज के गर्भ में जमा होती जाएगी। मैंने सन् 50से 60 के दस वर्षों में ही दृढ़तापूर्वक इन भयावह परिणामों की ओर सबका ध्यान खींचा था।

1971 में जब बाढ़ आई तो देखा गया कि फरक्का बैराज अपनी घोषित क्षमता 26 लाख क्यूसेक जल प्रवाह का निकास भी नहीं कर पाता है। उस वर्ष उसकी निकासी क्षमता मात्र 23 लाख क्यूसेक थी। इसे सौभाग्य ही कहा जाए कि 1971 के वर्षा काल में उत्तरी बंगाल के क्षेत्र में औसत से 5 प्रतिशत कम वर्षा हुई, नहीं तो बाढ़ से और भी भयानक तबाही मचती। पद्मा नदी की बाढ़ महानंदा से प्रवाहित होकर मालदह शहर को पूरी तरह डुबा देती।

आज पश्चिम बंगाल में बाढ़ नियंत्रण के लिए जो नीम-हकीम सुझाव दिए जा रहे हैं, उनसे समस्याओं का

समाधान ने होकर परिस्थिति और भी जटिल हो जाएगी। मालदह जिले को बचाने के लिए फरक्का के पास गंगा के किनारे बांध की लंबाई बढ़ाई गई, इससे पूर्णिमा जिले में कोसी नदी के मुहाने से गंगा की बाढ़ प्रवेश करेगी और पूर्णिया और मालदह जिले पर बाढ़ का कहर बरपेगा। भविष्य में धीरे-धीरे इसी रास्ते में गंगा की नई जल धारा तैयार होगी जो फरक्का बैराज को पार कर बांग्लादेश में प्रवेश करेगी। बरसात में दामोदर घाटी परियोजना से पानी छोड़ने के बाद दामोदर के निचले हिस्से में जो बाढ़ आएगी, उसे बांध को ऊंचा बनाकर नहीं रोका जा सकेगा। बांध की ऊंचाई की भी एक निश्चित सीमा होती है और वह पूरी तरह भौगोलिक, आर्थिक और राजनैतिक परिस्थिति पर निर्भर करती है। लोगों को विस्थापित कर जो बांध बनाए जा रहे हैं, उससे पुनर्वास की समस्याएं और भी जटिल होती जाएंगी। निश्चित सीमा रेखा तक बांध को ऊंचा करने पर भी जो अतिरिक्त जल अतिवृष्टि के समय बाढ़ नियंत्रण के लिए रोक कर रखना चाहिए, उसे उसी समय ही छोड़ा जाएगा, जिसके भयंकर परिणाम होंगे और फिर उसकी जलधारा भी मिट्टी से जल्दी भर जाएगी। अब यह भी कहा जा रहा है कि मुंडेश्वरी नदी किनारे तट बंध बनाए जाएंगे। मगर ऐसे बांध के निर्माण से यहां की नदी की तलहट भर जाएगी। नदी में यह सब हो ही चुका है। फिर अतिवृष्टि के समय बांध के टूटने से प्रबल बाढ़ आने की आशंका बनी रहेगी। वह तो प्रलय ही होगी न ?

यह सब तथ्य जानते हुए भी अधिकारी वही करेंगे जो प्रस्ताव में आया है। वजह यह कि नेता लोग अपने धन की ताकत बढ़ाने के लिए जल्द से जल्द कुछ कर देना चाहते हैं, कुछ नया कर दिखाना चाहते हैं। भविष्य में जो नुकसान होता है, उस पर कोई ध्यान नहीं देना चाहता। इसके अलावा ठेकेदारों और इंजीनियरों को बेहिसाब पैसा कमाने का रास्ता मिल जाता है। इसलिए ऐसी योजना पास होने में देर नहीं लगती। सच्चाई यह है कि हुगली नदी की जल निकासी क्षमता को बढ़ाना ही बाढ़ रोकने का एकमात्र रास्ता है। इसके लिए जरूरी है कि हुगली नदी के मुहाने पर ज्वार का नियंत्रण हो जिससे ज्वार से आई हुई मिट्टी नदी के तल को भर न सके।

इसके बाद रूपनारायण और दामोदर को साद के ड्रेजर द्वारा अधिक गहरा किया जा सकता है। इसके लिए जरूरी है कि दामोदर घाटी परियोजना की संपूर्ण सिंचाई परियोजना रद्द हो यहां केवल जल विद्युत का उत्पादन होगा, सिंचाई की नहरों को भर दिया जाएगा। नलकूप और पंप के सहारे वैकल्पिक सिंचाई व्यवस्था का इंतजाम करना होगा। उम्मीद है कि भविष्य में बांग्लादेश का सहयोग मिलेगा। जलंगी, चुरनी आदि पथ को नियंत्रित कर ब्रह्मपुत्र और पद्मा नदी के पानी का सहयोग नहीं भी मिला तब भी सूखे के महीने में फरक्का बैराज परियोजना से भागीरथी नदी में गंगा का जल प्रवेश नहीं होने पर भी कोई हानि नहीं होगी। इसके अतिरिक्त गाथाभाग, भैरव और इच्छामति की धारा के सहारे बांग्लादेश और भारत मिल-जुल कर समृद्धि और विकास का रास्ता तय कर सकते हैं। पद्मा और मेघना नदी की जल निकासी क्षमता बढ़ने से उत्तर बंगाल और बांग्लादेश के पूर्वी भाग की बाढ़ का नियंत्रण कुछ आसान हो जाएगा। (सप्रेस)

महात्मा गाँधी का भाषण : बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय स्थापना के अवसर पर

फरवरी 6, 1916

1915 में दक्षिण अफ्रीका से स्वदेश लौटने के बाद महात्मा गाँधी की यह प्रथम सार्वजनिक वक्तृता थी। इस व्याख्यान से राममनोहर लोहिया तथा विनोबा अत्यन्त प्रभावित हुए। ''इस व्यक्ति के विचारों में मुझे बंगाल की क्रांति तथा हिमाल की शांति का समन्वय दिखा'', विनोबा ने कहा। —सं.

दोस्तो, यहाँ आते हुए मुझे रास्ते में बहुत देर लग गई। मैं इसके लिए क्षमा-याचना करता हूँ। आप मुझे खुशी से माफ भी कर देंगे क्योंकि इस देरी के लिए न मैं जिम्मेदार हूँ न कोई और आदमी (हँसी); सच कहो तो मैं पिंजरे का जानवर हूँ और मेरी देखरेख करने वाले लोग अत्यधिक ममता के कारण जीवन के एक महत्त्वपूर्ण पहलू अर्थात् शुद्ध संयोग की बात को भूल जाते हैं। इस बार भी हम लोग, मैं, मेरे निरीक्षक और मुझे उठाकर चलने वालों को एक के बाद एक जिन दुर्घटनाओं का सामना करना पड़ा, उसकी पूर्व कल्पना करके तो कोई इन्तजाम नहीं किया गया था; इसलिए इतनी देरी हो गई।

दोस्तो, अभी-अभी जो महिला भाषण देकर बैठी है उनकी अद्‍भुत वाक्शक्ति के प्रभाव में आकर आप लोग कृपया इस बात पर विश्वास न कर लें कि जो विश्वविद्यालय अभी तक पूरा बना और उठा भी नहीं वह कोई परिपूर्ण संस्था है; और अभी जो विद्यार्थी यहां आये तक नहीं हैं वे शिक्षा-सम्पादन करके यहां से एक महान् साम्राज्य के नागरिक होकर निकल चुके हैं। मन पर ऐसी कोई छाप लेकर आप लोग यहाँ से न जायें और जिनके सामने आज मैं बोल रहा हूँ वे विद्यार्थीगण तो एक क्षण के लिए भी इस बात को मन में जगह न दें कि जिस आध्यात्मिकता के लिए इस देश की ख्याति है और जिसमें उसका कोई सानी नहीं है उस आध्यात्मिकता का संदेश बातें बघार कर दिया जा सकता है। अगर आपका ऐसा कुछ खयाल हो तो मेहरबानी करके मेरी इस बात पर भरोसा कीजिए कि आपका वह खयाल गलत है। मुझे आशा है कि किसी-न-किसी दिन भारत संसार को यह सन्देश देगा; किन्तु केवल वचनों के द्वारा वह सन्देश कभी नहीं दिया जा सकेगा। मैं भाषणों और तकरीरों से ऊब गया हूँ। अलबत्ता पिछले दो दिनों में यहाँ जो भाषण दिये गये उन्हें मैं इस तरह की तकरीरों से अलग मानता हूँ; क्योंकि वे जरूरी थे। फिर भी मैं यह कहने की धृष्टता कर रहा हूँ कि हम भाषण देने की कला के लगभग शिखर पर जा पहुँचे हैं और अब आयोजनों को देख लेना और भाषणों को सुन लेना ही पर्याप्त नहीं माना जाना चाहिए; अब हमारे मनों में स्फुरण होना चाहिए और हाथ-पाँव हिलने चाहिए। पिछले दो दिनों में यहाँ जो भाषण दिये गये यदि उनमें लोगों की परीक्षा ली जाये और मैं परीक्षक होऊँ तो निश्चित है कि ज्यादातर लोग फेल हो जायें। क्यों? इसलिए कि इन व्याख्यानों ने उनके ह्रदय नहीं छुए। मैं गत दिसम्बर में राष्ट्रीय महासभा के अधिवेशन में मौजूद था। वहाँ बहुत अधिक तादाद में लोग इकट्‌ठा हुए थे। आपको ताज्जुब होगा कि बम्बई के वे तमाम श्रोता केवल उन भाषणों से प्रभावित हुए जो हिन्दी में दिये गये थे। ध्यान दीजिए यह बम्बई की बात है, बनारस की नहीं, जहाँ सभी लोग हिन्दी बोलते हैं। बम्बई प्रान्त की भाषाओं और हिन्दी में उतना फर्क नहीं है जैसा अंग्रेजी और भारतीय भाषाओं में है; और इसलिए वहाँ के श्रोता हिन्दी में बोलने वाले की बात ज्यादा आत्मी भाव से समझ सके। मुझे आशा है कि इस विश्वविद्यालय में विद्यार्थियों को उनकी मातृभाषा के माध्यम से शिक्षा देने का प्रबन्ध किया जायेगा। हमारी भाषा हमारा ही प्रतिबन्ध है और इसलिए यदि आप मुझसे यह कहें कि हमारी भाषाओं में उत्तम विचार अभिव्यक्त किये ही नहीं जा सकते तब तो हमारा संसार से उठ जाना अच्छा है। क्या कोई व्यक्ति स्वप्न में भी यह सोच सकता है कि अंग्रेजी भविष्य में किसी भी दिन भारत की राष्ट्रभाषा हो सकती है? (''नहीं, नहीं'' की आवाजें) फिर राष्ट्र के पाँवों में बेड़ी किस लिए? जरा सोचकर देखिए कि अंग्रेजी भाषा में अंग्रेज बच्चों के साथ होड़ कराने में हमारे बच्चों पर कितना वजन पड़ता है। पूना के कुछ प्रोफेसरों से मेरी बात हुई। उन्होंने बताया कि चूँकि हर भारतीय विद्यार्थी को अंग्रेज के मारफत ज्ञान-सम्पादन करना पड़ता है, इसलिए उसे अपनी जिन्दगी

के वेश-कीमती बरसों में कम-से-कम छः वर्ष अधिक जाया करने पड़ते हैं। हमारे स्कूलों और कालेजों से निकलनेवाले विद्यार्थियों की संख्या में इस छः का गुणा कीजिए और फिर देखिए कि राष्ट्र के कितने हजार वर्ष बरबाद हो चुके हैं। हम पर आरोप लगाया जाता है कि हममे पहल करने का माद्दा नहीं है। हो भी कैसे सकता है? यदि हमें एक विदेशी भाषा पर अधिकार पाने के लिए जीवन के अमूल्य वर्ष लगा देने पड़ें तो फिर और हो क्या सकता है? और तो और हम इसमें भी सफल नहीं हो पाते। श्री हिगिनवॉटम ने श्रोताओं को जितना प्रभावित किया क्या कल और आज बोलने वालों में एक भी अन्य वक्ता उतना प्रभावित कर सका? यह उन बोलने वालों का कसूर नहीं था। सामग्री तो उनके भाषणों में भरपूर थी; लेकिन उनके भाषणों ने हमारा मन नहीं पकड़ा। कहा जाता है कि आखिरकार भारत के अंग्रेजीदाँ ही देश का नेतृत्व कर रहे हैं और वे ही राष्ट्र के लिए सब-कुछ कर रहे हैं। अगर इससे विपरीत बात होती तो वह और भी भयानक होती; क्योंकि हमें शिक्षा का नाम पर केवल अंग्रेजी शिक्षा ही तो मिलती है। शिक्षा का कुछ-न-कुछ परिणाम तो निकलता ही है। किन्तु मान लीजिए हमने पिछले पचास वर्षों में अपनी-अपनी भाषाओमं के जरिए शिक्षा पायी होती; तो हम आज किस स्थिति में होते? तो आज भारत स्वतंत्र होता; तब हमारे पढ़े-लिखे लोग अपने ही देश में विदेशियों की तरह अजनबी न होते बल्कि देश के ह्रदय को छूने वाली वाणी बोलते; वे गरीब से गरीब लोगों के बीच काम करते और पचास वर्षों की उनकी उपलब्धि पूरे देश की विरासत होती। (तालियाँ) आज तो हमारी अर्धांगिनियाँ भी हमारे श्रेष्ठ विचारों की भागीदार नहीं हैं। प्रो0 बसु और प्रो0 राय तथा उनके शानदार आविष्कारों को ही लीजिए। क्या यह लज्जा की बात नहीं है कि जनता का उनसे कुछ लेना-देना नहीं है?

अब हम दूसरी बात लें। कांग्रेस ने स्वराज्य के बारे में एक प्रस्ताव पास किया है। यों तो मुझे विश्वास है कि अखिल भारतीय कांग्रेस और मुस्लिम लीग अपना कर्त्तव्य करेंगी और कुछ-न-कुछ ठोस सुझावों के साथ सामने आयेंगी; किन्तु जहाँ तक मेरा सवाल है मैं स्पष्ट रूप से यह बात स्वीकार करना चाहता हूँ कि मुझे इस बात में उतनी दिलचस्पी नहीं है कि वे क्या-कुछ कर पाती हैं, जितनी इस बात में है कि विद्यार्थी-जगत् क्या करता है या जनता क्या करती है। कोई भी कागजी कार्रवाई में स्वराज्य नहीं दे सकता। धुआँधार भाषण हमें स्वराज्य के योग्य नहीं बना सकते। वह तो हमारा अपना आचरण है जो हमें उसके योग्य बनायेगा। (तालियाँ)। सवाल यह है कि हम अपने पर किस प्रकार राज्य करना चाहते हैं? मैं आज भाषण नहीं देना चाहता, श्रव्य रूप में सोचना चाहता हूँ। यदि आज आपको ऐसा लगे कि मैं असंयत होकर बोल रहा हूँ तो कृपया मानिए कि कोई आदमी जोर-जोर से बोलता हुआ सोच रहा है और वही आप सुन पा रहे हैं। और यदि आपको ऐसा जान पड़े कि मैं शिष्टाचार की सीमा का उल्लंघन कर रहा हूँ तो कृपया उस स्वच्छन्दता के लिए आप मुझे क्षमा करेंगे। कल शाम मैं विश्वनाथ के दर्शनों के लिए गया था। उन गलियों में चलते हुए मेरे मन में खयाल आया कि यदि कोई अजनबी एकाएक ऊपर से इस मन्दिर पर उतर पड़े और यदि उसे हम हिन्दुओं के बारे में विचार करना पड़े तो क्या हमारे बारे में कोई छोटी राय बना लेना उसके लिए स्वाभाविक न होगा? क्या यह महान् मन्दिर हमारे अपने आचरण की ओर उँगली नहीं उठाता? मैं यह बात एक हिन्दू की तरह बड़े दर्द के साथ कह रहा हूँ। कह रहा हूँ। क्या यह कोई ठीक बात है कि हमारे पवित्र मन्दिर के आसपास की गलियाँ इतनी गन्दी हों? उसके आसपास जो घर बने हुए हैं वे बे-सिलसिले और चाहे-जैसे हों। गलियाँ टेढ़ी-मेढ़ी और सँकरी हों। अगर हमारे मन्दिर भी सादगी और सफाई के नमूने न हों तो हमारा स्वराज्य कैसा होगा? चाहे खुशी से चाहे लाचारी से अंग्रेजों का बोरिया-बसना बँधते ही क्या हमारे मन्दिर पवित्रता, स्वच्छता और शान्ति के धाम बन जायेंगे?

मैं कांग्रेस के अध्यक्ष से इस बात में सहमत हूँ कि स्वराज्य की बात सोचने के पहले हमें बड़ी मशक्कत करनी पड़ेगी। हमारे यहाँ हर शहर के दो हिस्से होते हैं; बस्ती खास और छावनी। बस्ती को अक्सर एक बदबूदार गन्दी कोठरी समझिए। यह ठीक है कि हम शहरों की जिन्दगी के आदी नहीं हैं। लेकिन जब शहरी जिन्दगी की हमें जरूरत ही है तो उसे हम अपने लापरवाह ग्राम्य-जीवन का प्रतिबिम्ब तो नहीं बना सकते। बम्बई की जिन गलियों में भारतीय रहते हैं वहाँ राहगीर को यह धुकधुकी लगी ही रहती है कि कहीं कोई ऊपर की मंजिल से उन पर पीक न छोड़ दे। यह बड़ी विचारणीय परिस्थिति है। मैं काफी रेल-यात्रा करता हूँ। तीसरे दर्जे के यात्री की तकलीफों पर ध्यान जाता है। किन्तु इन सभी तकलीफों की जिम्मेदारी रेलवे के अधिकारियों के ऊपर नहीं मढ़ी जा सकती। यह जानते हुए भी कि डिब्बे का फर्श अकसर सोने के काम में बरता जाता है हम उस पर जहाँ-तहाँ थूकते रहते हैं। हम जरा भी नहीं सोचते कि हमें

वहाँ क्या फेंकना चाहिए, क्या नहीं; और नतीजा यह होता है कि सारा डिब्बा गन्दगी का अवर्णनीय नमूना बन जाता है। जिन्हें कुछ ऊँचे दर्जे का माना जाता है, वे अपने से कम भाग्यशाली अपने भाइयों के साथ डाँट-डपट का व्यवहार करते हैं। विद्यार्थी-वर्ग को भी मैंने ऐसा करते पाया है। वे भी (गरीब) सहयात्रियों के साथ (कुछ अच्छा) व्यवहार नहीं करते। वे अंग्रेजी बोल सकते हैं और नारफॉक जाकिटें पहने होते हैं और इसलिए वे अधिकार जताकर डिब्बे में घुस जाते हैं और बैठने की जगह ले लेते हैं। मैंने हर अँधेरे कोने को मशाल जलाकर देखा; और चूँकि आपने मुझे बातचीत करने की यह सुविधा दी है, मैं अपना मन आपके सामने खोल रहा हूँ। स्वराज्य की दिशा में बढ़ने के लिए हमें बिलाशक ये सारी बातें सुधारनी चाहिए। अब मैं आपको दूसरी जगह ले चलता हूँ। जिन महाराजा महोदय ने कल की हमारी बैठक की अध्यक्षता की थी। उन्होंने भारत की गरीबी की चर्चा की। दूसरे वक्ताओं ने भी इस बात पर बड़ा जोर दिया। किन्तु जिस शामियाने में वाइसरॉय द्वारा शिलान्यास-समारोह हो रहा था वहाँ हमने क्या देखा। एक ऐसा शानदार प्रदर्शन, जड़ाऊ गहनों की ऐसी प्रदर्शनी, जिसे देखकर पेरिस से आने वाले किसी जौहरी की आँखें भी चौंधिया जातीं। जब मैं गहनों से लदे हुए उन अमीर-उमरावों को भारत के लाखों गरीब आदमियों से मिलाता हूँ तो मुझे लगता है कि मैं इन अमीरों से कहूँ, जब तक आप अपने ये जेवरात नहीं उतार देते और उन्हें गरीबों की धरोहर मानकर नहीं चलते तब तक भारत का कल्याण नहीं होगा। (हर्षध्वनि और तालियाँ) मुझे यकीन है कि सम्राट् अथवा लॉर्ड हार्डिज सम्राट् के प्रति वास्तविक राजभक्ति दिखाने के लिए किसी का गहनों के सन्दूक उलटकर सिर से पाँव तक सजकर आना जरूरी नहीं समझते। अगर आप चाहें तो मैं जान की बाजी लगाकर महाराज जॉर्ज पंचम का सन्देशा आपको लाकर दे दूँ कि वे यह नहीं चाहते। भाइयो, जब कभी मैं सुनता हूँ कि कहीं, फिर वह ब्रिटिश भारत में हो चाहे हमारे बड़े-बड़े राजाओं और नवाबों द्वारा शासित रजवाड़ों में, कोई बड़ा भवन उठाया जा रहा है, तो मेरा मन दुःखी हो जाता है और मैं सोचने लगता हूँ, 'यह पैसा तो किसानों के पास से इकट्ठा किया गया पैसा है।'' हमारे 75 प्रतिशत से भी अधिक लोग किसान हैं; कल श्री हिगिनबॉटम ने अपनी प्रवाहमयी वाणी में कहा, ''ये ही वे लोग हैं जो एक के दो दानें करते हैं।'' यदि हम इनके परिश्रम की सारी कमाई दूसरों को उठाकर ले जाने दें तो कैसे कहा जा सकता है कि स्वराज्य की कोई भी भावना हमारे मन में है। हमें आज़ादी किसान के बिना नहीं मिल सकती। आज़ादी वकील और डॉक्टर या सम्पन्न जमींदारों के वश की बात नहीं है।

अब अन्त में उस बात का थोड़ा-सा विवेचन करना मैं अपना कर्त्तव्य समझता हूँ, जिसने आज दो-तीन दिनों से हमारे मनों को उद्विग्न कर रखा है। श्रीमान् वाइसरॉय के यहाँ के रास्तों से निकलने के समय हम सब लोग बड़ी ही चिन्ता में थे। स्थान-स्थान पर खुफिया पुलिस के लोग नियत थे। हम दंग रह गये। हमारे मन में बार-बार यह प्रश्न उठता था कि हम लोगों के प्रति इतने अविश्वास का क्या कारण है? इस प्रकार मरणान्तक-दुःख भोगते हुए जीने की अपेक्षा क्या लॉर्ड हार्डिज के लिए सचमुच ही मर जाना अधिक श्रेयस्कर नहीं है! परन्तु एक बलशाली सम्राट् के प्रतिनिधि इस प्रकार मर भी नहीं सकते। मृतक की भाँति जीना ही वे शायद जरूरी समझते होंगे पर दूसरा प्रश्न यह है कि खुफिया पुलिस का जुआ हमारे सिर पर लादने का क्या कारण है? हम क्रुद्ध होते हों, बड़बड़ाते हों, हाथ-पैर पटकते हों, या और जो चाहे-सो करते हों, पर फिर भी यह नहीं भूलना चाहिए कि भारत में अराजक दल की उत्पत्ति का कारण उतावलेपन का नशा है। मैं खुद भी अराजक ही हूँ; पर दूसरे वर्ग का। हमारे यहाँ अराजकों का एक वर्ग है जिससे यदि मुझे मिलने का अवसर मिले तो मैं उनसे स्पष्ट कह दूँगा कि ''भाइयो! यदि भारत को अपने विजेताओं पर विजय प्राप्त करनी हो तो आपकी अराजकता के लिए यहाँ जगह नहीं है।'' यह भीरुता का लक्षण है। यदि आपका ईश्वर पर विश्वास हो और यदि आप उसका भय मानते हों तो फिर आपको किसी से डरने का कोई कारण नहीं है; फिर चाहे वे राजा-महाराजा हों, वासिरॉय हों, खुफिया पुलिस हों अथवा स्वयं सम्राट् हों। अराजकों के स्वदेश-प्रेम का मैं बड़ा आदर करता हूँ। ये जो स्वदेश के लिए आनन्दपूर्वक मरने के लिए प्रस्तुत रहते हैं उनकी मैं इज्जत करता हूँ। पर मैं उनसे पूछता हूँ कि क्या किसी की जान लेना प्रतिष्ठा का कार्य है? क्या छुरे से हत्या करने के फलस्वरूप जो मृत्यु दंड प्राप्त होता है उसे किसी भी प्रकार गौरवपूर्ण माना जा सकता है? मैं कहता हूँ 'नहीं'। कोई धर्मग्रन्थ ऐसे उपाय का अवलम्बन करने की अनुमति नहीं देता।

यदि मुझे इस बात का विश्वास हो जाये कि अंग्रेजों के रहते हुए इस देश का कदापि उद्धार न होगा—उन्हें यहाँ से निकाल ही देना चाहिए— तो उनसे अपना बोरिया-बिस्तर समेट कर यहाँ से चलते होने की प्रार्थना करने में मैं कभी

आगा-पीछा न करूँगा और मुझे विश्वास है कि अपनी इस दृढ़ धारणा के समर्थन में मैं मरने को भी तैयार रहूँगा ऐसा मरण ही मेरी सम्मति में प्रतिष्ठा का मरण है। बम फेंकने वाला गुप्त-रूप से षड्यंत्र करता है। वह बाहर निकलने से डरता है और पकड़े जाने पर अपने अयोग्य और अतिरिक्त उत्साह का प्रायश्चित भोगता है। ये लोग कहते हैं कि यदि हम लोग ऐसी कार्रवाइयाँ न करते, यदि हमारे कुछ साथी बहुतों को बम का निशाना न बनाते तो बंगभंग के सम्बन्ध में....। (इस स्थान पर श्रीमती बेसेंट ने गांधीजी से भाषण शीघ्र समाप्त करने के लिए कहा।) मि० लॉयन्स की अध्यक्षता में बंगाल में भी मैंने यही बात कही थी। मेरा खयाल है कि मैं जो-कुछ कह रहा हूँ वह बिलकुल ठीक है। मुझे अपना भाषण बन्द करने को कहा जायेगा तो मैं बन्द कर दूँगा। (अध्यक्ष को सम्बोधित कर) महाराज, मैं आपकी आज्ञा की प्रतीक्षा कर रहा हूँ। यदि आपकी समझ में मेरी इन बातों से देश और साम्राज्य को हानि पहुँच रही है तो मुझे अवश्य चुप हो जाना चाहिए। (कहिए, कहिए का शोर; अध्यक्ष ने गाँधीजी से अपना मतलब साफ तौर पर बतलाने को कहा) मैं अपना मतलब स्पष्ट करता हूँ। मैं सिर्फ (फिर गड़बड़) मित्रों, इस गड़बड़ से आप रुष्ट न हों। श्रीमती बेसेंट को मेरा चुप हो जाना उचित जान पड़ता है, इसका कारण यह है कि भारत पर उनका बहुत अधिक प्रेम है और वे समझती हैं कि युवकों के सामने इस प्रकार की स्पष्ट बातें कहकर मैं अनुचित काम कर रहा हूँ। पर यदि ऐसा हो तो भी मेरा कहना है कि मुझे भारत को उस अविश्वास से मुक्त करना है जो राजा और प्रजा, सभी के मन में उत्पन्न हो गया है। यदि अपने साध्य को प्राप्त करना हो तो परस्पर की प्रीति तथा विश्वास पर स्थापित साम्राज्य से ही हमारा काम चलेगा और अपने-अपने घरों में बैठे-बैठे दायित्व-हीन ढंग से यही बातें कहने की अपेक्षा क्या इस विद्यालय के प्रांगण में खड़े होकर उन्हें खुले तौर पर कहना अधिक अच्छा नहीं है? मेरा तो खयाल है, इन बातों को पूरी स्पष्टता से कहना ही अधिक अच्छी बात है। पहले भी मैंने ऐसा ही किया है और उसका परिणाम बड़ा ही उत्तम हुआ है। मैं यह भी जानता हूँ कि आज ऐसी कोई बात नहीं है जिसकी विद्यार्थियों में चर्चा न होती हो या जिसे वे न जानते हों। इसीलिए मैंने यह आत्म-निरीक्षण आरम्भ किया है। अपने देश का नाम मुझे बड़ा ही प्यारा है। इसी से मैंने आप लोगों के साथ विचार-विनिमय की इतनी चेष्टा की है और आप लोगों से मेरी नम्रतापूर्वक प्रार्थना है कि अराजकता को भारत में बिलकुल स्थान न मिलने दीजिए। राज्यकर्ताओं से आपको जो-कुछ कहना हो उसे खुलकर साफ शब्दों में कह दीजिए और तैयार रहिए। आप उन्हें गालियाँ न दीजिए। जिस सिविल-सर्विस पर निन्दा की बेहद बौछार की जाती है एक बार उसके एक अधिकारी से मुझे वार्तालाप करने का अवसर मिला था। इन लोगों से मेरा कुछ बहुत हेलमेल नहीं है, तथापि उसकी बातचीत का ढंग प्रशंसनीय था। उसने पूछा— क्या आपका भी ऐसा ही खयाल है कि हम सभी सिविल-सर्विस वाले बुरे होते हैं और जिन लोगों पर शासन करने के लिए हम यहाँ आते हैं उन पर हम केवल अत्याचार ही करना चाहते हैं? मैंने कहा— "नहीं, मैं ऐसा नहीं मानता।" इस पर उसने कहा कि 'तो फिर जब कभी आपको मौका मिले आप हम अभागे सिविल-सर्वेंटों के पक्ष में लोगों के सामने दो शब्द कहने की कृपा करें।" वे दो शब्द मैं यहाँ कहने वाला हूँ। इंडियन सिविल-सर्विस के बहुत-से लोग निःसन्देह उद्धत, अत्याचार-प्रिय और अविवेकी होते हैं। इसी तरह के और कितने ही विशेषण उन्हें दिये जा सकते हैं। यह सब कुछ मुझे स्वीकार है। यही नहीं, मैं यह भी मानता हूँ कि कुछ वर्षों तक हमारे देश में रहकर वे और भी ओछी मनोवृत्ति के बन जाते हैं। पर इससे क्या सूचित होता है? यहाँ आने के पहले यदि वे सभ्य और सत्पुरुष थे, पर यहाँ आकर यदि वे नीति-भ्रष्ट हो गये तो क्या इसको हमारे ही चरित्र का प्रतिबिम्ब नहीं कहना चाहिए? (नहीं, नहीं) आप लोग खुद ही विचार करें कि एक मनुष्य जो कल तक भला आदमी था, मेरे साथ रहने पर खराब हो जाये तो उसके इस अधःपतन के लिए कौन उत्तरदायी होगा? वह या मैं? भारत में आने-पर खुशामद की जो हवा उन्हें चारों ओर से घेर लेती है वही उनके नीतिच्युत होने का कारण है। ऐसी हालत में कोई भी व्यक्ति नीतिच्युत हो सकता है। कभी-कभी अपना दोष स्वीकार करना भी अच्छा होता है। यदि किसी दिन हमें स्वराज्य मिलेगा तो वह अपने ही पुरुषार्थ से मिलेगा। वह दान के रूप में कदापि नहीं मिलने का। ब्रिटिश-साम्राज्य के इतिहास पर दृष्टिपात कीजिए। ब्रिटिश-साम्राज्य चाहे जितना स्वातंत्र्य-प्रेमी हो, फिर भी स्वतन्त्रता-प्राप्ति के लिए स्वयं उद्योग न करने वालों को वह कभी स्वतंत्रता देने वाला नहीं है। आप चाहें तो बोअर-युद्ध से कुछ शिक्षा ले सकते हैं। कुछ ही वर्ष पहले जो बोअर लोग साम्राज्य के शत्रु थे, वही अब उसके मित्र हैं।

(इस समय फिर गड़बड़ शुरू हुई और श्रीमती बेसेंट उठकर चल दीं। उनके साथ और भी कई बड़े-बड़े लोग उठकर चलते बने। और व्याख्यान का अन्त यहाँ हो गया।)

●

कॉर्पोरेट घरानों को छूट-खुदरा व्यापारियों की लूट

अनुराग मोदी

ईस्ट इण्डिया' कंपनी और उसकी ब्रिटिश हुकूमत ने भारत में अपनी कंपनियों के व्यापार को फ़ैलाने के लिए, उस समय के देशी उद्योग धंधों को खत्म करने वाले फैसले लिए - जिसके खिलाफ 'भारत माता की जय' के नारे लगे थे । वहीं, भारत माता की जय', कन्हैया और जे. एन. यू. जैसे भावनात्मक मुद्दों में देश को उलझाकर, मोदी सरकार ने पिछले कुछ महीनों में कुछ ऐसे निर्णय लिए जो खुदरा व्यापार को चंद देशी-विदेशी कॉर्पोरेट समूहों के हाथ में सौंपने की दिशा में बड़ा कदम है।

जो लोग यह सोचते हैं कि ऐसा नहीं होगा – वो जरा यह समझे कि भारत चाईना के माल से क्यों पट गया?

असल में, अटल बिहारी बाजपेयीजी की सरकार ने 28 दिसम्बर 1999 को अमेरिका और भारत के बीच एक द्वि-पक्षीय समझौता किया था। जिसके अनुसार– भारत को 1 अप्रैल 2000 तक 714 वस्तुओं और 1 अप्रैल 2001 से 2015 तक 715 वस्तुओं से 'मात्रात्मक' प्रतिबन्ध हटाना था; इस निर्णय के बाद से, लिस्ट में दिए गए 1429 उत्पाद आसानी से कितनी भी मात्रा में भारत में आयात किया जा सकता था। इस फैसले से देश के छोटे-छोटे उत्पादक खत्म हो गए – देश चीन के माल से पट गया। खुदरा व्यापारियों को इससे फर्क नहीं पड़ा- उन्होंने देशी की जगह चाईना का माल बेचा।

मोदी सरकार ने पिछले महीनों में खुदरा व्यापार के खिलाफ जो फैसले लिए है; वो हैं– पहला, सोने के आभूषणों पर उत्पाद शुल्क (एक्साइज ड्यूटी); दूसरा, 'ई कॉमर्स' में 100% सीधे विदेशी निवेश की छूट; तीसरा – फ़ूड प्रोसेसिंग के व्यापार में भी 100% सीधे विदेशी निवेश की छूट। वहीं बिहार चुनाव के परिणामों के शोरगुल के बीच, 12 नवम्बर 15 को सैन्य सामान, भवन निर्माण जैसे 15 क्षेत्रों में 49% सीधे विदेशी निवेश की छूट के साथ-साथ, निजी बैंकों के लिए इस छूट को 75% कर दिया गया। इन फैसलों से खुदरा व्यापार के साथ-साथ बैंको की पूंजी पर भी उनका कब्जा हो जाएगा।

विदेशी ई-कॉमर्स कंपनियों के पास आधुनिक तकनीक और सस्ती पूंजी दोनों है, जहाँ विदेशी पूंजी 3% ब्याज दर पर आती है; वहीं देशी पूंजी पर ब्याज दर न्यूनत्तम 12% है। इस अकेले चीन की अलीबाबा ई-कॉमर्स कंपनी की वेबसाइट पर 12 लाख विक्रेता रजिस्टर्ड है; वो दुनिया के सबसे धनी व्यक्तियों में से है। खुदरा व्यापरियों पर शिंकजा और विदेशी पूंजी को 100% छूट से देश में हर तरह के खुदरा व्यापार पर एक बड़ा संकट आ जाएगा।

फ़ूड प्रोसेसिंग का धंधा लगभग 7 से 8 लाख करोड़ का है। वहीं, ई-कॉमर्स का धंधा, जो 2009 में 23 हजार करोड़ रुपए का था, वो 2016 में 2 लाख 35 हजार करोड़ रुपए तक जा पहुंचा है – 2020 तक, इसके 6 लाख करोड़ रुपए से ऊपर पहुँचने की उम्मीद है। सोने के आभूषणों के कुल 2.5 लाख करोड़ रुपए के धंधे में से अभी 36 हजार करोड़ ई-कॉमर्स के जरिए होता है – जो कुछ सालों में 1.5 लाख करोड़ रुपए तक पहुँच जाएगा।

असल में, सरकार इंस्पेक्टर राज लाकर उनका व्यापार खत्म करना चाहती है। यह शंका गलत नहीं है; आने वाले समय में केंद्र सरकार जिन 2 लाख लोगों की भर्ती करने वाली है, उसमें 75 हजार की भर्ती एक्साइज, राजस्व और इन्कम टैक्स विभाग में होगी।

क्योंकि सोने के आभूषणों के निर्माण और बिक्री के असंगठित क्षेत्र में - 4,50,000 सोनी और 1,00,000 ज्वेलर्स है। सरकार 1% के जरिए स्वर्ण-आभूषणों के निर्माण और बिक्री के असंगठित धंधे को मुश्किल बनाकर, उसे संगठित क्षेत्र में कंपनियों के नियंत्रण में देना चाहती है। क्योंकि, उत्पादन शुल्क (एक्साइज ड्यूटी) लगाने का मतलब है– ज्वेलरी के निर्माण के हर स्तर पर एक्साइज इंस्पेक्टर का नियंत्रण; जिससे इसका निर्माण असंगठित क्षेत्र में मुश्किल हो जाएगा, और, छोटे-छोटे ज्वेलर्स को भी कंपनियों के पास बना माल लेना होगा। वैसे भी, 2008 में, देश में खुदरा ज्वेलरी का 10% व्यापार संगठित क्षेत्र में था; जो पहले ही सरकार की नीतियों के चलते 2014 में

बढ़कर 22% हो गया है।

सस्ती पूंजी के दम पर, इन विदेशी कंपनियों की नज़र गोल्ड लोन मार्केट पर भी है। आज, मात्र कुछ कंपनियों और बैंकों के पास इस लोन मार्केट का मात्र 25% हिस्सा है – जो 530 अरब का है; 2002 में यह मात्र 25 अरब रुपए था । मुतूहूत फाइनेंस कंपनी का गोल्ड-लोन मार्केट, जो मार्च 2005 में मात्र 756.9 करोड़ रुपए का था वो अप्रैल 2012 में बढ़कर 25 हजार 388 करोड़ रुपए हो गया।

अमेरिका सहित इन विदेशी कॉर्पोरेट समूहों ने दुनिया के अनेक देशों में खुदरा व्यापार मिटा दिया- अब इन्होंने भारत की तरफ रुख किया है; इनके साथ हमारे देश के बड़े-बड़े औद्योगिक घराने भी मिल गए।

यह विदेशी कंपनी कैसे काम करती है, एक उदाहरण से समझें; अमरीकी कंपनी उबेर – जो बड़े शहरों में टैक्सी सेवा चलाती है - ने बिना एक भी टैक्सी खरीदे। मुम्बई, दिल्ली और बैंगलौर जैसे मेट्रो शहरों में दस- बीस हजार निजी टैक्सी चालकों को अपने साथ जोड़ लिया; और बस, एक मोबाईल ऐप के जरिए एक बड़ी सी टैक्सी सर्विस कंपनी शुरू कर दी। याने हींग लगी ना फिटकरी और रंग चोखा का चोखा वाली बात। और, जैसे उबेर ने अमेरिका में वहां के स्थानीय टैक्सी वालों को बर्बाद कर दिया; वैसे यहाँ भी होगा। और जब एक बार निजी टैक्सी का धंधा पूरी तरह से उसके कब्जे में आ जाएगा, वो मनमानी कीमत वसूलेगा; जैसे, अभी भी 'पीक आवर्स' में वो दुगने पैसे वसूलते हैं।

सरकार व्यापार सुधारे और देश के विकास के लिए टैक्स वसूली बढ़ाए – यह अच्छी बात है। लेकिन, एक तरफ बड़े-बड़े व्यापारिक घरानों को छूट और खुदरा व्यापारियों की लूट का काम मोदी सरकार कर रही है। बिना बैंकों का पैसा चुकाए माल्या देश से भाग गए; अडानी ग्रुप पर 72 हजार करोड़ रुपए का ऋण है - कुल 44 कॉर्पोरेट घरानों पर 4 लाख 26 हजार 4 सौ करोड़ का बकाया सरकार बट्टे खाते में डाल चुकी है; मोदी सरकार से पहले यह राशि 3 लाख 24 हजार 3 सौ करोड़ थी। वहीं 2016-17 के केन्द्रीय बजट में इन लोगों को 6 लाख 11 हजार करोड़ से ज्यादा की राजस्व वसूली भी माफ़ की गई है – जो हमारे कुल बजट का एक तिहाई हिस्सा है ।

लेकिन इन मुद्दों को लेकर व्यापारी समाज, खुली खिलाफत करने के बजाए, कुछ छद्म भावनात्मक मुद्दों में उलझा हुआ है।

इस बात का अहसास मुझे तब हुआ - जब मैं, हाल ही में अपने मूल शहर, म. प्र. के सिवनी-मालवा पहुंचा। मेरे नौकरी छोड़ 'समाजवादी' आंदोलन से जुड़ने के कारण, अक्सर जब मैं यहाँ आता था; तो मेरी मेरे भाइयों और दोस्तों से कई सारे मुद्दों पर तीखी बहस होती थी। जब इस बार मैं घर आया, तो मुझे लगा वो लोग मुझसे उनके व्यवसाय पर आने वाले आघात के कारणों पर बहस करेंगे – मेरे घर में पिछली तीन पीढ़ियों से सर्राफा व्यापार जो होता है। मगर, ऐसा नहीं हुआ; इस बार हमारी बहस के मुद्दे थेः भारत माता की जय, कन्हैया का देशद्रोह, और 'जे. एन. यूं. 'देशद्रोहियों' का अड्डा है! और, तब मुझे समझ आया किस तरह से सरकार ने इन मुद्दों को एक 'धुएं की दीवाल' (स्मोक स्क्रीन) के रूप में इस्तेमाल किया है। जैसे, सैन्य कार्यवाही के समय एक कृत्रिम धुएं का पर्दा खड़ा कर, सैनिक अपने सामने खड़े दुश्मन से नज़र बचाकर एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाते हैं ।

इस संकट के दौर में देश के वैश्य समाज को कई बातों को समझना होगा और ठोस फैसले लेने होंगे। पहला : यह गलतफहमी दूर करना होगा कि देश में समाजवादी विचारधारा रखने वाले लोग उन्हें मिटाना चाहते है; आज तक तो एक को भी नहीं मिटाया। व्यापार पर संकट किसी एक सरकार या उसके फैसले से नहीं आ रहा है। बल्कि, भारत ने 1991 में वैश्वीकरण की नीति अपनाई थी, उसके बाद से अमेरिका के दबाव में सरकारें लगातार ऐसे नीतिगत फैसले ले रही है जिससे देश में छोटे-छोटे उत्पादक और खुदरा व्यापारी धीरे-धीरे खत्म हो जाएँगे – उसके बजाए सारा व्यापार चंद बड़े देशी-विदेशी कॉर्पोरेट घरानों के हाथ में सिमट जाएगा। धीरे-धीरे यह कॉर्पोरेट घराने सरकार से ज्यादा ताकतवर हो जाएंगे; तब क्या होगा? एक कॉर्पोरेट घराने के हाथ में धंधा आने पर क्या होता है; यह लोग प्लास्टिक दाने का काम अंबानी के हाथ में आने पर समझ गए होंगे।

वैश्वीकरण की इस नीति को कांग्रेस की सरकार ने अपनाया था – इसलिए, जो मनमोहन सिंह पहले विश्व-बैंक में नौकरी करते थेः वो पहले उनकी सरकार में वित्तमंत्री बने, और फिर दस साल तक प्रधानमंत्री। हाँ, यह जरुर है कि

इसे वो धीरे-धीरे धीमे ज़हर की तरह आगे बढ़ा रही थी; वहीं मोदी सरकार ने उसमें अचानक काफी तेजी ला दी है।

दूसराः उन्हें इन पार्टियों के प्रति अपनी अंधी राजनैतिक प्रतिबद्धता के बारे में सोचना होगा; और भावनात्मक मुद्दों में फंसने से बचना होगा। तीसराः समाज से जो कमा रहे हैं, उसका कुछ हिस्सा उसे लौटाना होगा; और लोगों के साथ पुनः एक रिश्ता जोड़ना होगा। पहले वो आम समाज के लिए कई काम करता थाः जैसे शिक्षण संस्थान के लिए दान देना, अस्पताल और धर्मशाला खोलना, तालाब बनवाना आदि। लेकिन, अब उसने आम समाज की इस मूल जरूरत को भी उसने अपना व्यापार बना लिया है; जिसके चलते उसका लोगों से रिश्ता टूट गया। हालाँकि, अब शिक्षा और स्वास्थ के क्षेत्र में भी बड़ी देशी-विदेशी कंपनियां आ रही हैं। इस समय वैश्य समाज का सारा दान बड़े बाबाओं को जा रहा है – अनेक बाबाओं के पास इस दान के पैसे से हजारों करोड़ की संपत्ति है। जब वैश्य समाज आम लोगों से जुड़ेगा, तभी आम-जनता उसके साथ आएगी।

अगर व्यापारियों और जनता के सहयोग से देशी व्यापार नहीं बचाया गया, तो देश एक बार फिर आर्थिक और राजनैतिक रूप से गुलाम हो जाएगा; देश में आर्थिक और राजनैतिक सत्ता चंद घरानों के हाथ में चली जाएगी – और यही असली देशद्रोह होगा ।

●

राजेन्द्र राजन का एकल काव्य पाठ

संतोष कुमार

तुलसी पुस्तकालय भदैनी के हाल मे एकाकी पंखा अपनी गति से बल्ब की पीली रोशनी मे राजेन्द्र राजन के शब्दों को इतिहास से लेकर वर्तमान तक बिखेर रहा था। बमियान मे घायल बुद्ध से एक बुर्जग पख्तून से संवाद के बहाने वर्तमान की निर्ममता को उकेरते राजेन्द्र राजन बाजार मे बिकने के लिए विवश कबीर को हाल मे बैठे श्रोतागण दो-चार कर रहे थे । इतिहास मे जगह बनाने को आतुर नवश्रीमन्तो की शिनाख्त करते हुए कवि सहज सरल शब्दों श्रोतागण को इतिहास से बाहर कर दिए जाने की धमकियों के प्रतिफलन को इंगित कर रहे थे तो शाम का अंधेरा और घना दिख रहा था। कवि ने अपनी चुनी हुई कविताएं जैसे इतिहास मे जगह, बमियान मे बुद्ध, श्रेय, हत्यारे, पेड़, विजेता की प्रतीक्षा, इतिहास का नक्शा, नयायुग, बाजार, प्रतिमाओं के पीछे लौटना, तथा छूटा हुआ रास्ता आदि का पाठ किया । आलोचक श्री राम प्रकाश कुशवाहा ने कवि को इतिहास के निर्णायक मोड़ो और क्षणों की शिनाख्त करने वाला कवि बताते हुए बाजार की पड़ताल मे शेयर बाजार के प्रतीक चिन्ह सांड़ के अस्थिर चरित्र को चिन्हित करने मे कवि की संवेदना को उल्लिखित किया । वरिष्ठ कवि श्री ज्ञानेन्द्रपति ने अपने अध्यक्षीय संम्बोधन मे राजन्द्र राजन को कबीरी पम्परा से जोड़ते हुए अपनी काव्यालोचना मे स्वयं को भी नही बख्शने को रेखांकित किया और कवि के सहज बोधगम्य प्रतीको से वर्तमान के ज्वलंत प्रश्नो से मुखातिब होने की क्षमता के कारण उसकी मारक सम्प्रेषणीयता पर श्रोतागण का ध्यान आकृष्ट किया ।

समाजवादी जनपरिषद के अफलातून ने सुधी श्रोताओ के लिए राजेन्द्र राजन की कविता का एकल पाठ और ज्ञानेन्द्रपति के सभापतित्व का सुनहरा अवसर दिया था । बहुत सारी त्रासदियां और उनके बीच से निकलती उम्मीद की किरणों को टटोलते कवि ने श्रोतागण को इस कदर बांधे रखा कि समय कम पड़ गया ।

इतिहास पुरुष अब आएं कविता का अंश-
हम इतना भर जानते हैं
एक भट्ठी जैसा हो गया है समय
मगर इस आंच मे हम क्या पकाएं
ठीक यही वक्त है जब अपनी चौपड़ से उठकर
इतिहास पुरुष आएं
और अपनी खिचड़ी पका लें

—राजेन्द्र राजन

‘ब्लैक मनी’ कैसे पैदा होता है?

मनोज त्यागी

विदेशों में जमा भारत के ‘ब्लैक मनी’ के स्रोत क्या हैं और वह धन कैसे पैदा होता है? यह जानना दिलचस्प होगा हालाँकि इसके स्रोतों की अधिकारिक जानकारी तो लगभग अनुपस्थित है पर जो भी जानकारियाँ हैं उ नके आधार पर स्रोतों के बारे में एक मोटा–मोटा आकलन किया जा सकता है।

शुरुआत में ही यह स्पष्ट कर देना जरूरी है कि भ्रष्टाचार को विदेशों में जा रहे ब्लैक मनी का एकमात्र जिम्मेदार कारक नही मानना चाहिये। भ्रष्टाचार है जरुर पर वह उद्‌गम स्थल नही है। भ्रष्टाचार तो हमारे बहुत नजदीक की परिघटना है, पर उद्‌गम स्थल कही दूर, न दिखायी पड़ने वाली जगह पर है। भ्रष्टाचार को हम देख, पकड़ और दण्डित कर सकते हैं, उद्‌गम स्थल न तो दिखायी पड़ता है और न ही हमारी हैसियत उसे दण्डित करने की है। वह तो उस राक्षस की नाभि में बैठा हुआ है। जिसके चाहे जितने अंग कट जाय, सिर कट जाय पर वह मरता नही बल्कि पहले से ज्यादा ताकतवर होकर निकलता है। उस उद्‌गम स्थल को देखे, पकड़े और दण्डित किये बिना देश के बाहर जा रहे अवैध धन को नही रोका जा सकता। दूसरी बात यह कि अवैध और वैध धन के बीच की रेखा बहुत ही धुधली है। अवैध कब वैध हो जाय, पता ही नही चलता। काला कब सफेद हुआ जनता जान ही नही पाती। हालाँकि कालेधन के मुकाबले बाहर जाने वाला सफेद धन कहीं अधिक, कई गुना है पर उसे समझने, रोकने की बात कोई नही करता। हम उसकी बात जरुर करेंगे पर पहले काले धन की बात हो जाय।

कालेधन के मालिक कौन :– काले धन के मालिक वे राजनेता, नौकरशाह, व्यापारी उद्योगपति, दलाल, सट्‌टेबाज हैं जिनका जबरदस्त भाईचारा है उन लोगों के साथ जिनका दुनिया पर राज चल रहा है। कॉरपोरेट उपनिवेशवाद उन्हीं वैश्विक शासकों का मालिक है। पूर्व साम्राज्यवादी और उपनिवेशवादी ताकतों ने आधुनिक समय में कॉरपोरेट उपनिवेशवाद को जन्म दिया है। दुनिया के संसाधन, धन–दौलत, खान–पान, रहन–सहन, आचार–विचार, ज्ञान–विज्ञान, खेल–कूद पर आज कॉरपोरेटों का पूर्ण कब्जा है और इस कब्जे को बनाये रखने के लिये गोला बारूद नही कर्ज, सूचना और आइ टी के हथियारों का इस्तेमाल करते है। तीसरी दुनिया के देशों की सरकारें तो इन कॉरपोरेटो की एजेण्ट मात्र बनकर रह गयी है। कॉरपोरेटों के लाबिस्टों की पहुँच सत्ता के अन्तरतम गलियारों तक है। भारत पूरी तरह इनके चंगुल में है। देश की सम्प्रभुता केवल संविधान में लिखी है हकीकत में वह कहीं नही है। राजनीतिक आजादी, आर्थिक स्वायत्तता और सांस्कृतिक अस्मिता कोरे लफ्फाज बन चुके हैं। इसी भारत के 4–5 प्रतिशत लोग कॉरपोरेटी व्यवस्था के सहयोगी, समर्थक या कहें सेवक हैं और इस सेवकाई के बदले दुनियाँ के मजे लूट रहे है। उन्हे न तो देश की आजादी से कुछ लेना देना है और न देश की जनता का जीना मरना उनके लिये मायने रखता है। यही लोग है काले धन ‘ब्लैक मनी’ के मालिक जो विदेशों में जमा है। इन्होंने भारत में तथा विदेशों में दोनो जगह घर बनवा रखे हैं और आधा समय विदेश में ही बिताते हैं। ये उन राजे महाराजाओं के वारिस हैं जो अंग्रेजी राज में अंग्रेजो के साथ हुआ करते थे और अपनी काफी धन सम्पत्ति इंग्लैण्ड में रखा करते थे।

कॉरपोरेटों द्वारा कमीशन और घूस है मुख्य स्रोत :

हथियार सौदों में कमीशन और दलाली बहुत ही जानी पहचानी चीज है। कभी कभी यह गैर कानूनी लेन देन उजागर हो जाता है, पर अक्सर यह लेन देन शान्ति के साथ निपट जाता है। यह कमीशन और दलाली केवल हथियार सौदों में ही नहीं बल्कि जितनी तरह के भी सौदे हों, चाहे पेट्रोलियम मँगाने के, दाल मँगाने के, प्लास्टिक कचड़ा मँगाने के या सामान बाहर भेजने के, कच्चा लोहा या खनिज बाहर भेजने के, श्रमिकों के बाहर भेजने के इन सभी सौदों में कमीशन और दलाली ली दी जाती है। ज्यादातर विकसित देशों में तो यह

कारोबार कानूनी रूप से वैध है। कमीशन लेने या देने के लिये बाकायदा कानून बने हुए हैं। इसका कारण शायद यह है कि उन देशों की अर्थव्यवस्थाऐं कमीशन, दलाली और घूस के पैसे से पली बढ़ी हैं और आज चल रही हैं। स्विट्जरलैण्ड जैसे देशों की अर्थव्यवस्था में 95ः योगदान इसी तरह के पैसो का है। तीसरी दुनिया के तमाम तानाशाहों, फौजी शासकों, स्मगलरों, कर चोरो, मानव तस्करों का पैसा स्विट्जरलैण्ड के बैंकों में रखा हुआ। उस पैसे के मालिकों के नाम गोपनीय रखने के लिए वहाँ बाकायदा कानून बने हुए हैं और आप किसी भी तरह खाताधारकों की पहचान का पता नही लगा सकते हैं। कुछ कुछ ऐसी ही अर्थ व्यवस्थाऐं सिंगापुर, मॉरीशस जैसे देशों में तथा कैमेन आइजलैण्ड और बारामूडा जैसे कर–स्वर्गों में भी धीरे–धीरे विकसित हो रही है।

भारत में कमीशन और घूस को वैध बनाने वाले कानून नही हैं और कमीशन खोर, दलाल, घूसखोर अपना पैसा यहाँ रखने में डरते हैं। अतः ये लोग अपना अवैध पैसा सुरक्षित विदेशी पनाहगाहों में ही रखना पसंद करते हैं, जहाँ पैसा सुरक्षित रहता है और उनकी पहचान गोपनीय रहती है। भारत सरकार अपने तमाम प्रयासों के बावजूद स्विट्जरलैण्ड से उन भारतीयों के नाम पता नही कर पायी है जिनका पैसा स्विस बैंकों में रखा हुआ है। विदेशी बैंकों में रखे भारतीय धन को देश में वापस लाने के लिए इतना हल्ला हो चुका है, केन्द्रीय सरकार स्पेशल इनवेस्टीगेशन टीम बना चुकी है, सर्वोच्च न्यायालय स्वयं इस मसले को देख रहा है, जिसके कारण अवैध धन के मालिकों को अपने नाम उजागर होने का खतरा महसूस हो रहा है। उन्होंने स्विस बैंकों से अपना पैसा निकालकर सुरक्षित स्थानों पर ले जाना शुरू कर दिया है। कैमेन आइजलैण्ड, बारामूडा मारिशस और सिंगापुर में अवध धन के भारतीय खातेदार तो भारत सरकार के साथ मिलकर अपने काले पैसे को सफेद करने में लगे हुए हैं और इस पैसे को विदेशी पूँजी निवेश (Foreign Direct Investment-FDI) के नाम पर देश में ही खपा रहे हैं। पी–नेट्स भी एक ऐसा ही औजार है जिसके माध्यम से शेयर बाजार में पैसा लगाने वाले से उस पैसे का स्रोत नही पूछा जाता और उसका कालाधन आसानी से खप जाता है।

स्टॉक एक्सचैंज में धोखाधड़ी :– शेयर मार्केट में गलत कार्यो के (शेयर मूल्यों में अनाप शनाप उतार चढ़ाव, आदि) द्वारा कमाकर पैसा बाहर ले जाया जाता है। इस तरह के जो कार्य होते हैं उनमे प्रमुख हैं –

1– कम्पनियों के मुनाफा कमाने की क्षमता में हेराफेरी, कम्पनियों द्वारा अपनी बैलेंस शीट को फर्जी तरीके से तैयार करना और उतना ही मुनाफा दिखाना जितना वे दिखाना चाहती है। यह कर चोरी करने और शेयर मूल्यों में हेराफेरी करके धन कमाने का एक जरिया है कम्पनियाँ सभी नियमों को तोड़कर ऐसा करती हैं और वित्त मंत्रालय में अपने प्रभाव का इस्तेमाल करके हेराफेरी को बचा ले जाती है। इस तरीके से काफी धन देश के बाहर जाता है।

1950 से 1994 के बीच प्रकाश में आये मुख्य दलाली/भ्रष्टाचार के मामले। इनमें दलाली और घूस दी गयी जो भारतीय खातेदारों के नाम विदेशों में ही जमा हो गयी।

केस का नाम	घटित होने का वर्ष	केस में फंसा धन	शामिल व्यक्ति का नाम
1. मून्डरा घोटाला	1957	3करोड़ रु.	एल.आइ.सी.
2. नागरवाला केस	1971	60 लाख रु.	इन्दिरा गांधी का नाम लिया गया
3. वेस्ट लैण्ड हेलीकाप्टर मामला	1984		
4. फेयर फैक्स केस	1987		वी पी सिंह का नाम लिया गया
5. एच डी डब्लू सबमैरीन डील	1987	10 करोड़ रु.	राजीव गांधी का नाम लिया गया
6. बोफोर्स गन डील	1987	65 करोड़ रु.	राजीव गांधी का नाम आया
7. चैक पिस्टल डील	1987	10 करोड़ रु.	अर्जुन सिंह का नाम लिया गया
8. किंग आयल डील	1988	9–12 करोड़ रु.	ललित सूरी को दोषी ठहराया गया
9. एयरबस डील	1991	200 करोड़ रु.	घूस दी गयी

10.1 सिक्योरिटीज स्कैम	1992	132 करोड़ रु.	आयल इण्डिया डेवलेपमेंट बोर्ड से धन उठाया गया
10.2 सिक्योरिटीज स्कैम	1992	3000 करोड़ रु.	जानकीरमन समिति का आकलन
11. एबीबी लोको डील	1993	19 करोड़ डालर	–
12. चीनी घोटाला	1994	1200 करोड़ रु.	–
13. जैन हवाला केस	1995	65 करोड़ रु.	–
14. टेलीकाम घोटाला	1995	3 करोड़ रु.	–
15. यूरिया आयात घोटाला	1995	133 करोड़ रु.	राव के बेटे और तुर्की की कम्पनी कारसन
16. कावस गैस टरबाइन	1988	–	फ्रेंच अमरीकन कम्पनी सीजीईई आलस्थम को ठेका
17. सेंट किट्स जालसाजी	1991	–	वी पी सिंह को दोषी ठहराया गया
18. आयातित ओमानी गैस की ओवर प्राइसिंग	1994	1000 करोड़ रु.	सतीश शर्मा का नाम लिया गया

(ये घोटाले तो टिप आफ आइस वर्ग है भूमण्डलीकरण की नीति के बाद घोटालों की संख्या और उनमे शामिल धन की मात्रा कई गुना बढ़ी है)

2– नये शेयरो को फ्लोट करके और उन्हें सूचीबद्ध कराकर : नये शेयरों को सूची बद्ध कराने से पहले ही उनकी ट्रेडिंग शुरु हो जाती है। दलाल और कम्पनियाँ शेयर मूल्यों की जालसाजी में शामिल हो जाती हैं और सूची बद्धता से पहले ही फालतू शेयरों को त्याग देती हैं। जनता इस धोखाधड़ी में मूर्ख बनती है और दलाल तथा कम्पनियाँ काफी पैसा बनाती हैं।

3– मर्चेन्ट बैंकर्स की भूमिका भी बहुत ही संदेहास्पद रहती है और वे शेयरों की जोड़ तोड़ को बढ़ावा देते हैं और मुनाफा कमाते हैं।

4– पी एस यू का विनिवेश में भी धोखाधड़ी होती है। अन्तरराष्ट्रीय बैंकर्स, फाइनेन्सियर्स और सरकारी अधिकारियों का गठजोड़ मिलकर हेराफेरी करते हैं। विनिवेश वाले शेयरों का मूल्य कम रखा जाता है और उन्हें सस्ते दामों पर विदेशियों को हस्तांतरित कर दिया जाता है।

5– अन्दरुनी ट्रेड़िंग और सट्टेबाजी : इसमें एफ आई आई और म्यूचूअल फंड्स कम्पनियों से अग्रणी जानकारियाँ लेकर शेयरों की अन्दरुनी खरीद बिक्री (Insider Trading) कर लेते हैं। वे नीति निर्माताओं से नीतियों में परिवर्तन की एडवांस जानकारी लेकर सट्टेबाजी को बढ़ावा देते हैं। शेयर दलाल भयंकर सट्टेबाजी करते हैं और पैसा कमाते हैं जो कालाधन होता है और वह ज्यादातर बाहर चला जाता है।

निर्यात का अधिक मूल्य (Over Pricing) और आयात का कम मूल्य (Under Pricing) दिखाकर : इस तरीके से काफी ब्लैक मनी पैदा होता है और वह अधिकांश रुप से विदेशी बैंकों में जमा हो जाता है। इस तरीके का सर्वप्रथम इस्तेमाल सार्वजनिक उपक्रमों के बड़े अधिकारियों ने 60 के दशक में शुरु किया था। वे उपक्रमों के उत्पादों (मशीनों, रसायन, कच्चे खनिज आदि) को विदेश में बेचते थे तो 1 लाख का माल दो लाख में बेचते थे। 1 लाख रुपये कम्पनी के खाते में चला जाता था और 1 लाख रुपये उनके विदेशी खातों में। इसी तरह जब माल खरीदते थे या मंगाते थे तो 2 लाख के माल का मूल्य 1 लाख रुपये होता था पर कम्पनी से उसका मूल्य 2 लाख का भुगतान हो जाता है जिसमें से 1 लाख रुपये विदेशी आपूर्तिकर्ता को माल के मूल्य के रूप में और एक लाख रुपये ब्लैक मनी के रूप में उनके विदेशी या देशी खातों में जमा हो जाता था। बाद में यह काम निजी कम्पनियाँ भी खूब करने लगीं। सार्वजनिक और निजी कम्पनियों में इस काम को अन्जाम देते थे उनके बड़े अधिकारी और मालिकान। इस काम के लिए कम्पनियों में जन सम्पर्क विभाग बनाये गये थे जिनका घोषित काम तो जन सम्पर्क के द्वारा कम्पनी की छवि सुधारना होता था परन्तु अघोषित काम ऐसे खरीदारों और विक्रेताओं को ढूँढना होता था जो ओवर प्राइसिंग और अण्डरप्राइसिंग पर

माल खरीद और बेच सकें। नीरा राडिया की तो बाकायदा इस काम के लिए कम्पनी बनी हुई थी। इसके कारनामों का बाद में खुलासा हुआ और मुकदमा भी चल रहा है।

खेलों में, खासकर क्रिकेट में सट्टेबाजी : क्रिकेट में सट्टेबाजी का धन्धा जोरों पर चलता है। क्रिकेट की संस्थाओं के अधिकारी, क्रिकेट के खिलाड़ी सट्टेबाजों के साथ मिलकर बड़ी मात्रा में 'ब्लैक मनी' कमाते हैं। कई पर तो मुकदमे चल रहे हैं और कई को सजा हुई है। अन्य खेलों में भी खूब सट्टेबाजी चलती है। यह सारा धन विदेशी बैंकों या कर–स्वर्गों में जमा होता है।

देशभर में हुए तमाम विरोध प्रदर्शनों के दबाव में केन्द्र सरकार ने 'काले धन' के उत्पन्न होने और उसे रोकने के तरीकों का अध्ययन करने हेतु जून–2011 में तत्कालीन सीबीडीटी चेयरमैन एम सी जोशी की अध्यक्षता में उच्च स्तरीय कमेटी गठित की, जिसने 30 जनवरी 2012 को अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत कर दी। इस कमेटी की मुख्य पर्यवेक्षण और संस्तुतियाँ थीं–

1. दो मुख्य राजनीतिक दल (कांग्रेस और भाजपा) दावा करते हैं कि उनकी आमदनी क्रमशः 5 अरब रुपये और 2 अरब रुपये है। पर यह पैसा उनके कुल खर्चों का बहुत छोटा हिस्सा है। ये पार्टियाँ क्रमशः 100 अरब रु. और 150 अरब रुपये तो प्रतिवर्ष मात्र चुनाव खर्चों पर व्यय करती हैं। इसमें काफी कालाधन शामिल रहता है जो बाद में अपने हित में राजनीतिक फैसले करवाने में मदद करता है।

2. भ्रष्टाचार निरोधक कानून के तहत अधिकतम दण्ड को 3, 5 और 7 वर्ष से बढ़ाकर 2, 7 और 10 वर्ष का कठोर दण्ड कर दिया जाय तथा इनकम टैक्स एक्ट में भी सजा के वर्षों में परिवर्तन किया जाय।

3. कराधान (ज्ंगंजपवद) एक उच्च विशेषज्ञता वाला विषय है। इस क्षेत्र की विशेष जानकारी रखने वाले अखिल भारतीय जूडिसियल सेवा और एक नेशनल टैक्स ट्रिब्यूनल का गठन किया जाय।

4. यू एस ए के पेट्रियोट एक्ट में एक सीमा से ऊपर के वित्तीय लेनदेन (अमरीकियों द्वारा या अमरीकियों के साथ) के बारे में स्थानीय लॉ एनफोर्समेंट एजेन्सियों को सूचित करना पड़ता है। इस कानून की तरह भारत को भी भारत में काम कर रही इकाइयों को अपनी एक सीमा से अधिक के वैश्विक लेन देन के बारे में एजेन्सियों को सूचित करने पर जोर देना चाहिये।

5– बाहर से अपना काला धन स्वेच्छा से वापस लाने वाले व्यक्तियों को माफी देनी चाहिये या उन्हें मुकदमें से छूट मिलनी चाहिये।

इन संस्तुतियों और पर्यवेक्षणों से साफ है कि ज्यादातर मामलों में व्यक्ति या कॉरपोरेट्स अपनी आमदनी को छिपा लेते हैं। (पीएनएन)

●

संगमनेर राष्ट्रीय परिषद : देश-दुनिया की परिस्थिति पर प्रस्ताव

समाजवादी जन परिषद की संगमनेर, जिला अहमदनगर, महाराष्ट्र, में 21-22 अक्तूबर 2016 को आयोजित राष्ट्रीय शिविर में चर्चा में आए देश की वर्तमान परिस्थिति और राष्ट्रीय-अंतरराष्ट्रीय घटनाओं के मद्देनजर तथा राजनीतिक परिवर्तनों के बीच हमारा यह राजनीतिक प्रस्ताव है जो समाजवादी जन परिषद की नीतियों, विचारधारा और इन घटनाओं-परिवर्तनों पर हमारे नजरिए से विश्लेषण प्रस्तुत करता है।

भारत जैसे बहुलवादी समाज में पिछले कुछ समय से भारी उथल-पुथल देखने को मिल रहे हैं। यह उथल-पुथल हमारे नजरिए से बहुत सकारात्मक न होकर नकारात्मक, प्रतिगामी और रूढ़िवादिता की ओर बढ़नेवाले साबित हो रहे हैं। इसलिए सजप की आज 23 अक्तूबर 2016 को संगमनेर में आयोजित राष्ट्रीय परिषद इस पर अपनी चिंता प्रकट करती है और इस स्थिति में सुधार के लिए अपने स्तर से प्रयत्न जारी रखने का संकल्प व्यक्त करती है।

देश में दलित समाज का उत्पीड़न और उन पर होनेवाला अत्याचार कोई नई बात नहीं है। इसलिए हमारे लोकतांत्रिक, न्याय पर आधारित संविधान में इसे दूर करने की ओर भरसक प्रयत्न किए गए हैं। लेकिन पिछले दिनों की घटनाओं से यह साफ हुआ है कि यह अत्याचार समाप्त होने या कम होने की बजाये तेजी से बढ़ा है। गुजरात के ऊना में परंपरागत काम यानी, मृत जानवर की खाल उतार रहे दलित समाज के युवाओं पर गौरक्षा के नाम पर हमला किया गया और उन्हें बुरी तरह से मारा-पीटा गया। जब दलितों ने एकजुट होकर खाल उतारने के पेशे से अलग होने का ऐलान किया तो उन्हें फिर से मारपीट सहनी पड़ी। यह सब ऐसी सरकारों के समय में हुआ है जो खुद को हिन्दू समाज का रक्षक और न्यायप्रिय बताते नहीं अघाती है। इससे पहले सतना में संपन्न पिछली राष्ट्रीय कार्यकारिणी के राजनीतिक प्रस्ताव में हमने हैदराबाद केंद्रीय विश्वविद्यालय में दलित छात्र रोहित वेमूला की आत्महत्या (सांस्थानिक हत्या) पर चर्चा की थी। बाद में ऊना और उस जैसे अनेक जाने-अनजाने अत्याचार दलितों पर बढ़े ही हैं। सजप इन सबके लिए तथाकथित हिन्दूवादी पार्टी भाजपा और उसकी मातृसंस्था राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ को जिम्मेदार मानती है।

गौर की बात है कि गौरक्षा के नाम पर चलनेवाले अभियानों के निशाने पर भी मुख्य रूप से दलित और दलित जैसी स्थिति में रहनेवाले पिछड़े मुसलमान ही रहे हैं। कथित गौरक्षकों ने जब मरे हुए गायों की खाल उतार रहे दलितों को पीटा और मुसलमानों पर गोमांस न खाने के लिए दबाव बनाया, उसी समय केंद्र की मोदी सरकार पिछले 32 सालों से बीफ चर्बी के निर्यात पर लगे प्रतिबंध को हटाकर बीफ निर्यात को बढ़ावा देने की योजना पर अमल कर चुकी थी। कहना न होगा कि दुनिया में बीफ निर्यातक देशों में भारत दूसरे-तीसरे स्थान पर रहता है। असल में रूढिवादियों और सामंती दिमाग से चलनेवाले समूहों का उद्देश्य उभर रहे दलित-पिछड़े समाज का दमन करना और उसे जैसे की तैसे हालत में रहने देना है। लोकतांत्रिक व्यवस्था में ऐसे पिछड़े-दलितों का उभार आरएसएस और उसके आनुषंगिक संगठनों को रास नहीं आता है। बहाने के तौर पर कभी हिन्दू हित, कभी लव जेहाद तो कभी गौरक्षा उनके हथियार बनते रहे हैं। गोहत्या और गोरक्षा पर सजप स्पष्ट रूप से अपना रुख रखती है कि कृषि प्रधान देश में उपयोगी पशुओं का कत्ल व्यावसायिक लाभ के लिए के लिए नहीं होना चाहिए। इसके लिए बहुराष्ट्रीय कंपनियों और इनके जैसे अन्य व्यावसायिक फर्मों द्वारा चलाए जा रहे कत्लखानों को तत्काल बंद कर गोमांस का निर्यात समाप्त किया जाना चाहिए। सजप गांधी और लोहिया के इस विचार से भी अपनी सहमति जताती है कि गाय की रक्षा होनी चाहिए लेकिन गोपाल (इंसान) की कीमत पर नहीं। अगर मुसलमान या ईसाई सामज के लोग गोमांस खाते हैं तो उन्हें समझाया जा सकता है। लेकिन वे नहीं मानते हैं तो बलपूर्वक रोका नहीं जाना चाहिए। वैसे देश के कई राज्यों में गोहत्या पर प्रतिबंध लगा है और गोहत्या को कानूनी तौर पर अपराध की श्रेणी में रखा गया है। ऐसे में सजप कानून सम्मत एजेंसियों के अलावा किसी समूह, गिरोह या संगठन को गोरक्षा या किसी कानून प्रवर्तन की जिम्मेदारी देने का सख्त विरोध करती है।

गोरक्षा के नाम पर होनेवाले अत्याचारों की निंदा प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने भी सार्वजनिक रूप से की है और ऐसे तत्वों को रात में काले कारनामे करनेवाला तक बताया लेकिन उनका यह बयान सतही और भावुकता में लोगों को ठगनेवाला रहा। उनके संगठन के लोगों द्वारा अत्याचार बाद में भी बदस्तूर जारी है। प्रधानमंत्री को यह साफ करना चाहिए कि गोवंश के पशुओं के मांस व अन्य उत्पादों के निर्यात की सरकार की क्या नीति है और वर्तमान सरकार इसपर किस तरह से सोचती है? प्रधानमंत्री देश की कार्यपालिका का प्रमुख होता है। ऐसे में उसे सख्त कार्रवाई करनी चाहिए न कि बयानबाजी। उल्टे नरेन्द्र मोदी के मुख्यमंत्रित्व काल में गुजरात में ग्राम पंचायतों के अधीन निर्धारित सार्वजनिक गोचर भूमि को बड़ी मात्रा में उद्योगपतियों को दिया गया है। हरियाणा में भी भाजपा सरकार ऐसी गोचर भूमियों को अवैध कब्जे से मुक्त कराने में असमर्थ रही है। कमोबेश देश भर में गोचर और सार्वजनिक संपत्ति की ऐसी ही स्थिति है। सजप की मांग है कि सरकार तुरंत इन अवैध कब्जों को खाली कराकर पशु संवर्द्धन की दिशा में कदम बढ़ाए।

सांप्रदायिक भावना से ही जुड़ा सवाल कश्मीर मुद्दे से निपटने का केंद्र सरकार का प्रयास रहा है। सर्वविदित है कि कश्मीर की राजनीतिक स्थिति का प्रश्न स्वतंत्रता और भारत विभाजन के समय से ही बना हुआ है। कई बार भारत सरकार की गलतियों और पाकिस्तान के उकसावे में यह समस्या और जटिल होती गई है। चूंकि कश्मीर का बड़ा हिस्सा भारत में है, इसलिए भी यह जिम्मेदारी भारत की बनती है कि कश्मीर में आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक ढांचा कायम करने और उसे विकसित करने का

काम करे। दुर्भाग्य की बात है कि पिछले सत्तर सालों में कभी पूरे मन से यह काम नहीं हो पाया है। भारत को इस सवाल का जवाब देना भी बनता है कि जो मुस्लिम बहुल कश्मीर विभाजन के समय मुस्लिक उन्माद पर बन रहे पाकिस्तान के साथ नहीं गया, जिसने पाकिस्तान के संस्थापक मोहम्मद अली जिन्ना को तरजीह नही दिया, जिसने गांधी के नेतृत्व में चले राष्ट्रीय आंदोलन में जोर-शोर से हिस्सा लिया, वह कश्मीर कालांतर में भारत से क्यों दूर होता चला गया? आज कश्मीर में परिस्थितियां बदल चुकीं हैं। राज्य में बाकी देश की तरह ही सांप्रदायिक आधार पर विभाजन हो चुका है। जम्मू, लद्दाख और कश्मीर घाटी में एका नहीं है। इसके लिए भारत की नीतियां ही जिम्मेदार मानी जाएंगी। कुल मिलाकर कश्मीर एक जटिल समस्या है, जिसका राजनीतिक तौर पर समाधान तो जरूरी है ही, उससे पहले जम्मू-कश्मीर में शैक्षणिक, आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक ढांचे को खड़ा करने और उसे सशक्त बनाने की जरूरत है। सजप मानती है कि राज्य की वर्तमान पीडीपी- भाजपा सरकार और केंद्र की भाजपा नीत राजग सकरार की इस समस्या के समाधान की कोई इच्छाशक्ति नहीं है। बल्कि उल्टे देश भर में सांप्रदायिक उन्माद और वैमनस्य पैदा कर भाजपा-आरएसएस घटिया लाभ लेने की फिराक में है। सजप इस प्रवृत्ति की कड़ी निंदा करती है। साथ ही कश्मीर समस्या के हर पहलुओं की संवेदनशीलता और अंतरराष्ट्रीय गंभीरता के साथ जांच-परख कर कूटनयिक पहल की जानी चाहिए और पूरे भारतीय समाज को इसमें संलग्न होकर ऐसे समाधान की दिशा में बढ़ना चाहिए, जिससे कश्मीर और पाकिस्तान, बांग्लादेश समेत समूचे दक्षिण एशिया में शांति-सौहार्द कायम हो सके। तभी हम उम्मीद कर सकते हैं कि कश्मीर समस्या का समाधान भी आकार ले पाएगा।

यह देश धर्मनिरपेक्ष है। इसका स्पष्ट मतलब है कि राज्यसत्ता किसी धर्म के पक्ष में या उसके हित में काम नहीं करेगी। सभी धर्मों के प्रति समभाव रखेगी। लेकिन पिछले दिनों तेलंगाना के मुख्यमंत्री के. चंद्रशेखर राव ने जो किया, उससे देश के इस उदात्त मूल्यबोध को गहरा धक्का लगा है। उन्होंने काली मंदिर में राज्य की ओर से पूरी श्रद्धा और समर्पण के साथ तीन करोड़ का मुकुट चढ़ाया। यह घोर निंदनीय कृत्य है और सजप इसकी कड़े शब्दों में निंदा करती है। मुख्यमंत्री पर तत्काल एफआरआई होना चाहिए और संविधान विरुद्ध कर्म के लिए उन्हें कठोर सजा दी जानी चाहिए। हम इस बात से भी वाकिफ हैं कि आज के युग में धर्म मार्केट का अहम हिस्सा बन गया है और इस नाम पर व्यापार धड़ल्ले से चल रहा है। साथ ही हम यह भी मांग करते हैं कि अलग अलग धर्मों के प्रति राज्य का बर्ताव एक जैसा हो। जिस तरह से मुस्लिम धार्मिक संपत्ति के लिए वक्फ बोर्ड है, या बिहार, राजस्थान में धर्म स्थानम बोर्ड बना है, उसी तरह से पूरे देश के स्तर पर सभी धार्मिक संपत्तियों पर नजर रखने के लिए सरकार निकाय का गठन किया जाए और कहीं भी ऐसी संपत्तियों के दुरुपयोग को रोकने की मुकम्मल व्यवस्था सरकार की ओर से हो। इस संवेदनशील विषय की पूरी प्रक्रिया में बड़े समझ से बात को आगे बढ़ाने की जरूरत है।

वर्तमान सरकार की गैर जिम्मेदार नीतियों में सर्जिकल स्ट्राइक का बेजा प्रचार कर क्षुद्र चुनावी लाभ लेना भी है। सेना द्वारा संपन्न सर्जिकल स्ट्राइक को भाजपा चुनाव वाले राज्यों- यूपी और पंजाब में भुना रही है और पोस्टरों में भाजपा नेताओं की फोटो लगाकर उन्माद पैदा कर रही है। हम इसकी तीव्र भर्त्सना करते हैं। हम मांग करते हैं कि सरकार का पराक्रम न केवल पाकिस्तान के खिलाफ दिखे बल्कि हजारों किलोमीटर भूमि, हिंदुओं के पवित्र तीर्थ कैलास-मानसरोवर और बौद्धों के देश तिब्बत पर कब्जा जमाए चीन के साथ भी हो और इन इलाकों को चीनी पंजे से मुक्त कराकर पड़ोस को सुरक्षित बनाने का प्रयास किया जाए।

पिछले कुछ सालों में देश और दुनिया के स्तर पर पूंजीवाद नए रूप में उभरा है। देश में पिछला आम चुनाव पूंजीवाद का नया प्रयोग इस अर्थ में रहा कि उद्योगपतियों ने पहली बार खुलकर भाजपा का साथ दिया और मोदी को अपनी पसंद बताया। सरकार गठन के बाद स्वाभाविक तौर पर उन्हें इसका बेहद और गैरवाजिब फायदा किसान-मजदूर और जरूरतमंद समूहों की कीमत पर मिला है।

बुनकरों का रोजगार खत्म हुआ और जो बनारसी साड़ी एक कारीगर सात दिन में तैयार करता था, वह अब सूरत की मिलों में एक दिन में तीन साड़ी तैयार होने लगी हैं। इधर बुनकर बेकार हो गए। वैसे इस तरह के छोटे कौशल जनित रोजगारों का खात्मा होना राजीव गांधी के काल में ही शुरू हो गया था जब अंबानी समूह को राजीव गांधी ने सिंथेटिक धागे के आयात की अनुमति दी थी। इन बड़े उद्योगपतियों के लिए लगातार कानूनों को बदला गया और जो सामान केवल छोटे और मध्यम उद्योगों मे ही बनाने के लिए निर्धारित किए गए थे, उन सबके लिए बड़े उद्योगों के फाटक खोल दिए गए।

इस तरह अत्याधुनिक मशीनों से बने माल सस्ते होने के कारण छोटे, लघु व मध्यम उद्योग धीरे-धीरे खत्म होते चले गए। असंगठित मजदूरों का सवाल भी इसी तरह का है। इनके बारे में व्यापक नीति होनी चाहिए जिनसे इन्हें सरकारी लोक कल्याणकारी योजनाओं से जोड़कर संगठित श्रमिकों की तरह लाभ दिलाया जा सके। इस तरह देश में बिखड़े पड़े कौशल आधारित उद्योगों का नाश कर वर्तमान की मोदी सरकार स्कील इंडिया का एक झूठा और धोखाधड़ी का नारा गढ़ रही है। इसी क्रम में खनिज संपदा पर कब्जे की रणनीति भी है जिसका हम पूरी तरह से विरोध कर इस कथित विकास प्रक्रिया को ही खत्म करना चाहते हैं।

वर्तमान मोदी सरकार की देश की जनता को आर्थिक अव्यवस्था और नाकामियों जैसे मुख्य मुद्दों से भटकाने और देश में सांप्रदायिक तनाव पैदा कर आसन्न विधानसभाओं के चुनाव में सस्ती लोकप्रियता हासिल की अगली कड़ी में 'समान नागरिक संहिता' का मुद्दा उठाना है। इस मुद्दे पर भाजपा-संघ नीत सरकार का जोर सामाजिक न्याय, गैरबराबरी दूर करने की ओर कम और मुसलमानों को चिढ़ाने की रणनीति पर अधिक रहा है। मुसलमानों के शरीयत कानून में महिलाओं को तीन तलाक देकर पति के घर से हटा देने के एकतरफा और अन्यायपूर्ण रिवाज को सरकार हवा दे रही है। हालांकि उसकी नीयत मुख्य मुद्दे- नर नारी के बीच गैरबराबरी को दूर करना न होकर मुसलमानों को चिढ़ाना भर है। इस मुद्दे पर सजप अपनी सधी हुई प्रतिक्रिया को ही दोहराना चाहेगी। समाजवादी आंदोलन प्रारंभ से ही नर-नारी समेत हर प्रकार की समता की पक्षधर रही है। इसके लिए पैतृक संपत्ति में बराबरी का हक तथा हर व्यक्ति की स्वतंत्रता सुनिश्चित करना प्रमुख बिंदु रहा है। सबसे पहले यह सोशलिस्ट ही थे जिन्होंने समान नागरिक संहिता की मांग और इसे लेकर देश में जन जागरण भी यिका। सजप प्रस्ताव करती है कि देश में वर्तमान हर धर्मों, समुदायों के निजी सिविल कानूनों और रीति-रिवाजों का सम्यक अध्ययन कर उसमें से विषमतामूलक तत्वों को संधोधित किया जाए और भारतीय विविधता को बचाए रखते हुए समतामूलक, 'भारतीय नागरिक संहिता' का निर्माण किया जाए। इसके साथ ही व्यक्ति की स्वतंत्रता की दिशा में आगे कदम बढ़ाते हुए हर परंपराओं के विवाह व तलाक कानूनों की समीक्षा कर हर व्यक्ति की निजी इच्छा, पसंद और स्वतंत्रता का सम्मान करते हुए स्त्री-पुरुष संबंधों को परिभाषित किया जाए। इसमें हर व्यक्ति को उसकी इच्छा के अनुसार किसी के साथ रहने या अलग होने की सहज व सरल व्यवस्था कायम की जाए। यहां हम जोर देते हैं कि स्त्री-पुरुष के साथ-साथ रहने या अलग होने की पूरी प्रक्रिया सहज, तर्कसंगत और पारदर्शी होनी चाहिए। न केवल विभिन्न धर्मों के वैवाहिक संबंधों से बने रिश्तों बल्कि आधुनिक काल में विकसित हो चुकी सहजीवन या लिव इन रिलेशन संबंधों को भी परिभाषित कर लेना चाहिए। इस पूरी प्रक्रिया से झूठ और धोखाधड़ी को बेलाग अलग रखा जाना चाहिए। इस पूरी प्रक्रिया में विभिन्न समुदायों के प्रगतिशील तबकों को सक्रिय रूप से जोड़ा जाना चाहिए और उनकी बात सुनी जानी चाहिए।

सजप अपने स्तर पर भी इन कानूनों की समीक्षा कर एकसमान भारतीय नागरिक संहिता का निर्माण करने की संकल्प व्यक्त करती है ताकि सरकारों और समाज के सामने हम अपने नजरिए को स्पष्ट कर सांप्रदायिक शक्तियों की रणनीति को विफल कर सकें। हम यह भी व्यक्त करना चाहते हैं कि प्रत्येक स्त्री-पुरुष को स्वतंत्र देश में एक स्वतंत्र व्यक्ति के तौर पर रहने का हर हाल में दर्जा मिले और उसे परित्यक्त या परित्यक्ता जेसे अपमानजनक विशेषणों से संबोधित न किया जाए।

खेती-किसानी का मुद्दा वैसे तो आर्थिक संबंधों से ही जुड़ा है लेकिन भारत जैसे कृषि आधारित देश में इस पर अलग से प्रमुखता से कहने की जरूरत है। खेती-किसानी पर दिनोंदिन बहुराष्ट्रीय कंपनियों का शिकंजा कसता जा रहा है। सरकार किसानों की जमीन पर कब्जा करने के लिए सांप्रदायिकता, राष्ट्रीयता जैसे मुद्दों को हवा देती है। विभिन्न अनाज और कृषि उत्पादों को बाजार के हवाले करने के बाद फिलाहल सरकार की वक्रदृष्टि दलहन पर है। अभी सरकार ने अफ्रीकी देश मोजाम्बिक से 21 साल के लिए दाल आयात का समझौता किया है। इन आयातित दालों से एक ओर जहां किसानों को मिलनेवाली कीमत घट जाएंगी वहीं बड़े उद्योगपतियों को इसका बेतहाशा फायदा मिलेगा। एक झलक इसी साल मिल चुकी है जब 50 रुपये किलो आयातित दाल गुजरात के बंदर गोदामों में पड़े रहे और देश में 200 रुपये किलो तक दालें बिकने लगीं।

खेती की जमीनों पर मची मारधाड़ और खासकर एशिया, अफ्रीका की जमीनों पर कब्जे को लेकर आपाधापी मचा रही बहुराष्ट्रीय कंपनियां अंततः पूरे देश की जमीन पर कब्जा कर इसे कॉरपोरेट के कब्जे में लाने और किसानों को जमीन से बेदखल करने की दीर्घकालिक रणनीति पर काम

कर रही हैं, जिसका समर्थन हमारी सरकारें भी बढ़-चढ़कर कर रही हैं। देश की कृषि जमीनों पर एक्सप्रेस-वे, फ्रेट कॉरिडोर, रेल कॉरिडोर, एयरपोर्ट, हाईवे, इंडस्ट्रीयल कॉरिडोर आदि का सब्जबाग दिखाकर कब्जा किया जा रहा है। हम कृषि भूमि के ऐसे किसी बेमतलब इस्तेमाल की सख्त मुखालफत करते हैं और इस तरह के मायावी विकास को नकारते हैं।

जीएम फसलों के नए चलन का भी हम पूरजोर विरोध करते हैं क्योंकि यह परंपरागत बीज और स्वाबलंबी खेती के खिलाफ है। हाल में जीएम सरसों की देश में काफी चर्चा हो रही है। यह तब कि स्थिति है कि जब यूरोप और अमेरिका में जीएम फसलों का भारी विरोध हो रहा है। क्योंकि यह किसान विरोधी, पर्यावरण विरोधी और अंततः मनुष्य विरोधी है। सजप देश में समग्र किसान नीति के निर्माण की मांग करती है और खुद भी इस दिशा में प्रयास करने का संकल्प करती है। इसके लिए सजप ने देशव्यापी स्तर पर गठित किसान समन्वय समिति के साथ मिलकर काम करने का निश्चय किया है और इस आंदोलन को बढाने में अपना पूरा सहयोग करने का संकल्प व्यक्त करती है।

देश में बढ़ रही बेरोजगारी, बेचैनी और असुरक्षा का नतीजा ही है कि कई हिस्सों में आरक्षण की मांग को लेकर जाट, पटेल और मराठों के जातीय आंदोलन तेजी से और अपनी विशालता के साथ उभर रहे हैं। ये जमीन आधारित जातियां हैं जिनका हर स्तर पर सदा से शोषण होता हा रहा है। ये आंदोलन असल में उदारीकरण के दौर में वैश्विकरण की घातक कृषि नीति के दुष्प्रभाव का नतीजा हैं। पूरी दुनिया में छोटे किसानों की खेती इस नीति का शिकार हुई हैं। इसके साथ ही इन आंदोलनों पर भी गौर करने की जरूरत है। ये आंदोलन भविष्य में व्यवस्था परिवर्तन के हथियार बन सकते हैं,बशर्तें इन्हें सही दिशा मिल पाए। वर्तमान में इन जातीय आंदोलनों की अपनी सीमाएं हैं। ये शुद्ध रूप से जाति आधारित हैं या कई जातियों के गठबंधन हैं। इनमें से कुछ की प्रकृर्ति हिंसक भी रही हैं। महाराष्ट्र में इन दिनों निकल रही कई जातीय रैलियां दलित-महिला उत्पीड़न के खिलाफ बने कानूनों को भी हटाने की मांग करते हैं। इसके अलावा इन आंदोलनों पर नजर डालते समय हमें पूर्व के अनुभवों को भी परख लेना चाहिए। यूपी में चौधरी चरण सिंह के नेतृत्व में और बाद में महेंद्र सिंह टिकैत के नेतृत्व में चले जाट किसानों के आंदोलन बहुत कुछ इसी प्रकृत्ति के थे। इनका रुझान घोर जातीय और दलित विरोधी, परिवर्तन विरोधी भी था। इन्हीं कारणों से कुछ ही दिनों मे इन आंदोलनों का बेड़ा गर्क भी हो गया। टिकैत के आंदोलन में सजप के पूर्व घटक समता संगठन और जनांदोलन समन्वय समिति शामिल रहे हैं। ऐसे में अपने अनुभवों की कसौटी पर इन जातीय आंदोलनों को तराश कर ही हमें इसके साथ किसी तरह का संवाद कायम करने की ओर बढ़ना चाहिए। एक रास्ता यह हो सकता है कि अगर ये किसान जातीय संगठन जातीयता से ऊपर उठें और वैश्विकरण, उदारीकरण की आर्थिक नीतियों, जिसमें व्यापक रूप से कृषि नीति शामिल हैं, का स्पष्ट विरोध करती हैं और सजप की कृषि नीति के साथ खड़ी होती हैं तो हम इनका समर्थन करेंगे। हमें सजप की ओर से भी अपनी स्पष्ट नीति के साथ मोर्चे निकालने चाहिए।

देश के पांच राज्यों में विधानसभा के चुनाव आसन्न हैं। गोवा, पंजाब, उत्तराखंड, यूपी और में से केवल यूपी में ही सजप की उपस्थिति है। सजप की उत्तर प्रदेश इकाई यहां चुनाव में अपनी संभावित भूमिका पर विचार करेगी और सीधे चुनाव में उतर कर या चुनाव के दौरान अपनी नीतियों को प्रचारित-प्रसारित कर अपनी भूमिका निभाएगी।

इन तमाम परिस्थितियों के बीच सजप अपनी गतिविधियों को जारी रखने और आगे बढ़ाने को कृतसंकल्प है। क्योंकि उपरोक्त स्थिति में हमारी विचारधारा का हस्तक्षेप जरूरी है। ऐसे में सजप कार्यकर्ता, कार्यक्रम, कोष और कार्यालयी सांगठनिक तैयारी के साथ जनता के बीच जाएगी। इसके तहत विभिन्न हिस्सों में दलित-मजदूर-युवा-किसान-महिलाओं को मिलाकर सम्मेलन, आयोजित करना, अधिकाधिक सदस्य बनाना, कृषि और शिक्षा को लेकर अलग से सम्मेलनों का आयोजन, किसान-मजदूरों का राजनीतिक जन जागरण, उदारीकरण, पूंजीवादी व्यवस्था के खिलाफ सतत संघर्षों पर हम बल देते रहेंगे।

हमारे सांगठनिक कार्यक्रम का बहुत ही महत्वपूर्ण अंग विचार प्रसार का है। इसका एकमात्र और सशक्त जरिया हमारे पास सामयिक वार्ता है। सजप की हर इकाई और हर कार्यकर्ता का यह दायित्व है कि वह वार्ता की प्रसार संख्या बढ़ाने और इसे सशक्त करने में अपना योगदान दे।

सजप पिछले दिनों शुरू हुई समाजवादी समागम में भागीदारी करेगी। लेकिन समागम के आयोजकों के निवेदन है कि वे समागम का नीति वक्तव्य और उद्देश्य स्पष्ट कर संगठनों को अवगत कराएं ताकि इसमें स्पष्टता के साथ सहभागी बना जा सके।

'पिंक' और 'पर्च्ड' से जो छूटा रह गया है

प्रियदर्शन

इसमें शक नहीं कि हिंदी सिनेमा पिछले कुछ वर्षों में अपनी नायिकाओं के प्रति कुछ ज़्यादा उदार हुआ है और फिल्मी ढंग से ही नायिकाएं स्त्री-स्वातंत्र्य और सबलीकरण के पक्ष में बन रही एक नई संवेदना का वहन करती नज़र आ रही हैं। शायद इसी उदारता का नतीजा है कि बीते दो हफ़्तों में दो ऐसी फिल्में आईं जिनके केंद्र में स्त्री आज़ादी का सवाल है और पुरुष सत्तात्मकता की कुछ जानी-पहचानी सरणयों पर सीधा प्रहार भी। 'पिंक में तीन शहरी लड़कियों की कहानी है तो 'पर्च्ड' में तीन गंवई औरतों की दास्तान। एक-दूसरे के माहौल से कोसों दूर खड़ी इन लड़कियों को अंतत जो सूत्र जोड़ता है, वह पुरुष-सत्ता के प्रति इनका विद्रोह है जो कहीं जाने-अनजाने है और कहीं किसी मजबूरी में, और कहीं इस समझ से पैदा हुआ कि अंततः ये बेडियां तोड़नी होंगी।

इस टिप्पणी का मक़सद इन दो फिल्मों की समीक्षा नहीं है, बल्कि यह समझने की कोशिश है कि फिल्मों में यह जो नई स्त्री आ रही है, वह किस सामाजिक उद्वेलन की देन है और इसके नतीजे क्या होने हैं। 'पिंक' की लड़कियां हमारे शहरी मनोविज्ञान के ज़्यादा क़रीब बैठती हैं और बहुत दूर तक विश्वसनीय जान पड़ती हैं। वे एक परिचित की मार्फ़त तीन लड़कों से मिलती हैं और फिर उनके साथ डिनर और ड्रिंक करती हैं। इतने भर का खुलापन इन लडकियों को उन लड़कों की निगाह में बुरी और वेध्य बना डालता है- ऐसी लड़कियां जो इससे भी आगे जाने- यानी यौन संबंध बनाने तक को तैयार हो सकती हैं। लेकिन ऐसा होता नहीं है। खुद को बचाने में एक लड़की गिलास से लड़के के सिर पर वार करती है और तीनों लड़कियां निकल भागती हैं। लेकिन इसके बाद मर्दवादी प्रतिशोध का खेल शुरू होता है- लड़कियों को बदचलन साबित करने का और यह बताने का कि वे तवायफ़ें हैं जो पैसे के लिए किसी के साथ भी जा सकती हैं। यह अदालती लड़ाई वकील बने अमिताभ बच्चन की नाटकीय दलीलों के साथ ख़त्म होती है और लड़कियों के पक्ष में ख़त्म होती है। अमिताभ बच्चन कहीं इन तीनों को सामाजिक मान्यता के मुताबिक अच्छी लड़की साबित करने की कोशिश नहीं करते- उल्टे वे भरी अदालत में एक लड़की से यह कबूल करवाते हैं कि उसने विवाह पूर्व संबंध बनाए हैं। इतना सब होने के बाद उनकी अंतिम दलील है कि लड़कियों की 'ना' का सम्मान होना चाहिए। यह 'ना' एक शब्द नहीं, एक पूरा वाक्य है।

पर्च्ड की कहानी कहीं ज़्यादा आड़ी-तिरछी और कम भरोसेमंद जान पड़ती है। वहां तीन- बल्कि चार- लड़कियां हैं- एक बांझ, एक वेश्या, एक विधवा और एक बाल वधू। यह बात बाद में खुलती है कि जो खुद़ को बांझ समझ रही है, दरअसल वह बांझ नहीं है उसका पति नपुंसक है। जो विधवा है, वह अपने बेटे को बिगड़ता और अंततः घर से भागता देखती है, लेकिन इस बीच एक अनजान शख्स़ से प्रेम कर बैठती है जो मोबाइल पर उसे कॉल करता है। बाल वघू इस विधवा की बहू है, लेकिन हालात ऐसे बनते हैं कि वह महिला अपने बेटे की इस पत्नी को उसके एक पुराने दोस्त के साथ विदा कर देती है। नर्तकी और वेश्या अंततः यह महसूस करती है कि मर्दों की दुनिया बस उसे एक देह की तरह देखती है जिससे कारोबार किया जाना है और एक दिन सब छोड़कर चल देती है। दोनों फिल्मों के अंत में तीन-तीन लड़कियां अपने नए दिनों के सुकून और उम्मीद से भरी हुई हैं।

इन दोनों फिल्मों को जो एक स्वीकृति समाज में- और खास़कर स्त्रियों के बीच- मिल रही है, उससे यह तो स्पष्ट है कि एक व्यक्ति के रूप में स्त्री का सम्मान बढ़ा है और कुछ हिचक के साथ ही, लेकिन यह स्वीकार किया जा रहा है कि स्त्री की देह उसकी अपनी संपत्ति है जिसके इस्तेमाल का अपने ढंग से उसे हक है। हालांकि दोनों फिल्मों की अपनी नाटकीयताएं हैं। 'पिंक' की एक वैध आलोचना यह की जा सकती है कि उसमें बहुत सारे कानूनी नुक्तों का खय़ाल नहीं रखा गया है- शायद स्त्री अधिकारों से जुड़े नए कानूनों की समझ भी नहीं है, लेकिन ज़्यादा सही बात यह है कि दरअसल जो बहस फिल्म में अदालत के भीतर दिखाई जा रही है, वह असल में समाज में चल रही है जिसका एक रूपक अदालत है। इसके बाद कानूनी नुक्तों

का सवाल पीछे छूट जाता है और सामाजिक मान्यताओं का सवाल सामने आ जाता है। अमिताभ बच्चन जैसा वकील इसीलिए कानूनी नुक्तों की अनदेखी कर सामाजिक मान्यता को ही कठघरे में खड़ा करता है और उस मर्दवाद को मुजरिम साबित करने में कामायब होता है जो इस बदली हुई स्त्री को स्वीकार करने को तैयार नहीं है। हालांकि यह वैध सवाल पूछना गलत नहीं है कि अगर इस फिल्म को एक रूपक की तरह और निर्देशक की मंशा की तरह देखें तो फिल्म में अमिताभ बच्चन के नाटकीय अवतार की क्या ज़रूरत थी? क्या यह काम बदलते दौर की कई नई वकीलों की मार्फत नहीं कराया जा सकता था?

'पर्च्ड' की औरतों को किसी अमिताभ बच्चन की ज़रूरत नहीं है। बेशक वहां भी कोई शाहरुख खान फोन करने वाला है, लेकिन अंततः ये औरतें ही हैं जो अपनी नियति तय कर रही हैं- वह भी अपने अनुभव की खरोंच और उससे मिले ज़ख्मों को ठीक-ठीक पहचानने के बाद। इस लिहाज से कहें तो पर्च्ड की गंवई महिलाएं पिंक की शहरी लड़कियों से कहीं ज़्यादा क्रांतिकारी और स्वाधीन साबित होती हैं। वे स्त्रियों को संबोधित गालियों को बदल कर मर्दों से जोड़कर गालियां देती हैं और अपने स्त्रीत्व को नए सिरे से सिरजने की कोशिश करती दिखाई पड़ती हैं।

निश्चय ही इन दोनों फिल्मों की अपनी सीमाएं हैं, लेकिन इनका सबसे सकारात्मक पक्ष यही है कि वे स्त्रियों के हिस्से की कशमकश को बाखूबी रचती हैं और अंततः उनके स्वाधीन स्त्रीत्व के पक्ष में खड़ी होती हैं। हिंदी सिनेमा अगर यह हिम्मत कर रहा है तो इसलिए कि उसे अपने समाज के बदलाव पर भरोसा है। वरना सिनेमा की इसी दुनिया में तीस साल पहले नायक लड़कियों के साथ छेड़खानी करते थे और यह समझाते थे कि लड़कियां ऐसी छेड़खानी से काबू में आती हैं। एक दौर की हिट फिल्म 'धर्मवीर' में धर्मेंद्र जीनत अमान के साथ जिस तरह का सलूक करता है, वह आज नितांत आपराधिक मालूम पड़ता है। ऐसी ढेर सारी फिल्में और भी हैं जहां नायिकाएं नायक के हाथ का खिलौना दिखती है। यही नहीं, उस दौर की जो बुरी स्त्रियां हैं- वे अपने पश्चाताप के बावजूद नायिका को बचाते हुए नायक की बाहों में दम तोड़ने को मजबूर होती हैं- क्योंकि कहीं न कहीं यह मान्यता बद्धमूल है कि अपनी दैहिक शुचिता को दांव पर लगाने वाली लड़की का पश्चाताप तो स्वीकार होगा, उसका पुनर्वास संभव नहीं होगा, उसे अंततः मरना होगा।

'पिंक' और 'पर्च्ज' जैसी फिल्में इस दुविधा से दूर खड़ी हैं और अपनी नायिकाओं को ऐसे किसी नैतिक दबाव से मुक्त रख सकती हैं तो इसलिए कि समाज कम से कम सैद्धांतिक तौर पर इन लड़कियों को पहले की तरह हेय दृष्टि से देखने से बचता है। हालांकि लड़कियों के प्रति जो आम नज़रिया है, उसे देखते हुए यह उदारता पाखंड मालूम होती है जो अक्सर किन्हीं इम्तिहान की घड़ियों में तार-तार हो जाती है। इस लिहाज से कहें तो सिद्धांत और व्यवहार के बीच के इस पाखंड को उजागर करने वाली फिल्में बननी बाकी हैं। अकेली लड़की या अकेली लड़कियां अब भी हमारे समाज में कौतूहल का विषय होती हैं और घरों-दफ्तरों, बसों में आसान शिकार भी। कामकजी लड़कियों को लेकर चलने वाली दफ्तरी कानाफूसियां बेहद आम हैं और अक्सर उनकी ज़रूरतों का तिरस्कार करने वाली साबित होती हैं। पिछले दिनों लड़कियों का प्रसूति अवकाश छह महीने करने का कानून पास हो गया, लेकिन इसका नया खतरा यह पैदा हो गया है कि बहुत सारी कंपनियां लड़कियों को नौकरी पर रखने से बचेंगी- क्योंकि यह बात एक सामाजिक मान्यता के तौर पर हमारे गले उतरना बाकी है कि मां बनते हुए लड़कियां समाज का जो अतिरिक्त दाय पूरा करती हैं, उसका यह स्वाभाविक तकाजा है कि उन्हें अतिरिक्त छुट्टियां मिलें और उनकी इस भूमिका का सम्मान हो।

इसके अलावा स्त्री आज़ादी के इस पूरे मसले में एक और सवाल बड़ी चालाकी से अनदेखा छोड़ दिया जाता है। लड़कियों की बराबरी की सारी बातचीत और लड़कियों को पढ़ाने-खेलाने के सारे नारों के बावजूद घर की संपत्ति में उनके सहज अधिकार को अभी तक मान्यता नहीं मिली है। जो लड़की घर की संपत्ति में अपने भाइयों के साथ बंटवारा चाहेगी, वह एक बुरी और लालची लड़की कहलाएगी। संपत्ति का यह अधिकार पुरुषों ने बड़ी चालाक खामोशी के साथ अपने पास रखा हुआ है और लड़कियों को अंततः दूसरे घर जाना है- चाहे वे पति के घर जाएं या फिर 'पिंक' की लड़कियों की तरह अकेले रहने के बारे में सोचें। उम्मीद करें कि 'पिंक' और 'पर्च्ड' जैसी फिल्मों का सिलसिला आगे बढ़ेगा तो एक दिन स्त्री के संपत्ति के अधिकार पर भी फिल्में बनेंगी। लेकिन यह भी तब होगा कि भारतीय समाज कुछ पाखंडी टीस के साथ ही स्वाभाविक तौर पर यह मान ले कि पैतृक संपत्ति में लड़कियों का भी हिस्सा होता है।

●

हम कावेरी के बेटे-बेटी

महादेवन रामस्वामि

कावेरी जल विवाद एक बार पुनः विस्फोटक स्थिति में पहुंच गया है। इस दौरान सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय तक की अवहेलना हुई है। प्रस्तुत आलेख सन् 2010 में गांधी मार्ग में प्रकाशित हुआ था। आज दिनों-दिन बद्तर होती स्थिति में यह आलेख आशा की किरण साबित हो सकता है। साथ ही नदी जल विवादों को निपटाने के संबंध में महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकता है।

विश्व की सभी महान नदियां मानवजाति की अनेक सुविख्यात सभ्यताओं की जन्मभूमि रही हैं। इन नदियों के किनारे उभरीं और विकसित हुई इन सभ्यताओं का अस्तित्व बस नदी से जुड़ा रहा है। नदी ने उन्हें दैनिक जीवन की आवश्यकताओं के लिए जल प्रदान किया है। पीने का पानी, निस्तार के लिए पानी, सिंचाई के लिए पानी, पशुओं के लिए पानी, ऊर्जा के लिए पानी-क्या नहीं दिया इनने। नदी पर नाव द्वारा प्रयाण करके उन्होंने अपनी आसपास की दुनिया के बारे में जाना और अन्य क्षेत्रों, पास और दूर के समाजों के साथ संबंध बनाया। मौसम व समय के अनुसार बदलती नदी की प्रणाली को आधार बनाकर इन सभ्यताओं ने अपनी जीवन-शैली, अपने रीति-रिवाज, लोक-कथाओं व मान्यताओं को ऐसे सुंदर तरीके से रचाया कि नदी का प्रवाह जीवन के हर काम में उनका मार्गदर्शक बन गया।

लेकिन यह भी एक कड़वा सच है कि आज इन्हीं नदियों को दिव्य देन के रूप में देखने समझने के बजाय तरह-तरह की लालच, प्रदूशण और विवादों में परिवर्तित कर दिया है। यह प्रकृति के प्रति हमारे बदलते दृश्टिकोण के कारण हुआ है। मानव एक ऐसा दानव बन गया है जो समस्त सृश्टि को गुलाम बना उसे अपनी मनम-र्जी से चलाना और बदलना चाहता है। लेकिन अब इसके दुशपरिणाम सर्वत्र दिखने लगे हैं। जहां मनुश्य ने प्रकृति से लड़ाई शुरू की, वहां मनुश्य की मनुश्य से लड़ाई भी प्रारंभ हुई।

गांधीजी की कई साल पहले कही हुई बात आज के जन-जीवन के हर पहलू में, हर क्षेत्र और हर काम में सच साबित हो रही है कि सृश्टि हर व्यक्ति की जरूरतों को पूरा कर सकती है लेकिन वह किसी भी एक व्यक्ति के लोभ को संतुष्ट नहीं कर सकती। सर्वनाश की ओर तेजी से बढ़ती हम सबकी इस कहानी में कुछ-कुछ जगह आशा की हल्की किरणें भी नजर आती हैं।

बिगड़ते संबंधों को फिर से स्थापित करने तथा अपने जलसंसाधनों को एक संतुलित, टिकाऊ तरीके से प्रयोग करने का एक ऐसा अनोखा व आशाजनक प्रयास है 'कावेरी परिवार'। कावेरी हमारे देश की सप्त-सिंधुओं में से एक मानी जाती है। कर्नाटक तथा केरल से निकलते इसके अनेक स्त्रोत एक-दूसरे में मिलकर एक विशाल जल-धारा का रूप लेते हैं। फिर यह कर्नाटक और तमिलनाडु की विशाल भूमि से गुजरती हुई बंगाल की खाड़ी में शामिल हो जाती है। इस दौरान यह पुदुचेरी के दक्षिणी इलाके कारैकाल को भी छूती है।

475 किलोमीटर की लंबाई वाली यह नदी 72,000 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र को मापती है। कावेरी उतनी ही पुण्यकारी मानी जाती है, जितनी कि गंगाजी। खासकर हम दक्षिण के लोगों की भावनाएं इससे बहुत ही गूढ़ रूप से जुड़ी रही थीं। जैसे-जैसे अधिक लाभ उठाने के नाम पर, आधुनिक विकास के नाम पर चिरकाल से चलते आ रहे संतुलित संबंधों पर प्रहार हुआ तो विवाद भी उभरने लगे।

कावेरी विवाद का इतिहास थोड़ा पुराना है। शुरुआत तो एक बहुत ही छोटी-सी बात से हुई थी। सन् 1894 में उस समय के मैसूर राज्य ने अपने क्षेत्र में तालाबों इत्यादि पर कुछ काम करना चाहा तो मद्रास प्रेसिडेन्सी ने इस पर आपत्ति जताई। तमिल लोगों में तब यह बात फैल गई कि उनकी सदियों पुरानी सिंचित खेती-बाड़ी की स्वस्थ, सुंदर प्रथाओं पर इन कामों का बुरा असर होगा। यहां यह भी कहा जाना चाहिए कि बड़े स्तर पर सिंचित कृशि और उससे जुड़ी 'आधुनिक विकास' की कहानी में कर्नाटक या (तब का मैसूर) जरा देर से आने वाला पात्र रहा है। हालांकि यह भी सच है कि उसने इस रास्ते पर कदम जरूर देरी से रखा, पर पिछले बीस-तीस वर्शों में उसने इसे बड़ी तेजी से नापा है। उसकी चाल दौड़ में बदल गई है।

वापस लौटें सन् 1894 में। आपसी विचार-विमर्श व वार्तालाप से यह मामला कुछ समय के लिए निपट गया था। पर कुछ साल बाद जब दोनों क्षेत्रों में बड़े पैमाने पर बांध, जलाशय इत्यादि बनाने की चर्चा फिर से होने लगी, विशेश रूप से कृश्णराजसागर बांध तथा मेटूर जलाशय, तब दोनों पक्षों के बीच तनाव फिर से भड़क उठा। दूर दिल्ली की मध्यस्थता की मदद मिलने के बाद भी दोनों पक्ष किसी तरह के समझौते पर नहीं पहुंच पाए। मामला तब सात समुंदर पार

लंदन तक पहुंचा। भारत पर उस समय अंग्रेजी शासन था। वहां से तो बस यही आदेश आया कि आपस में समझौता करो। दोनों पक्ष गुलाम जो ठहरे। आदेश मिलने पर भला और क्या करते। दोनों ही प्रांतों में और अधिक विकास करने की कामना कहिए या लालच के जग जाने से इस समझौते के आधार पर चलते रहना मुश्किल साबित होता गया। देश के दक्षिण में पड़ौसी से मित्रता का आदेश जितनी दूरी तय कर लंदन से आया, उतनी दूरी अपने आंगन में नहीं तय कर पाया। अगले सौ बरस तक यह मामला ऐसा ही उलझा पड़ा रहा। बीच में देश आजाद भी हो गया पर दोनों पक्षों के बीच पानी का विवाद कटुता, परस्पर अविश्वास की जंजीरों में ही जकड़ा रहा ।

इस बीच तमिलनाडु सरकार ने उच्चतम न्यायालय से आग्रह किया कि समस्या समझौते से नहीं सुलझ रही है और इसलिए अब तो इसका न्यायिक समाधान होना चाहिए। आखिरकार सन् 1990 में उच्चतम न्यायालय के आदेश पर कर्नाटक, तमिलनाडु, केरल व पुदुचेरी के बीच कावेरी नदी के जल के न्यायपूर्ण बंटवारे के लिए एक 'ट्रिब्युनल' की घोशणा कर दी गई। ट्रिब्युनल ने सन् 1991 में अपना अंतरिम आदेश घोशित किया। इसमें उसने तमिलनाडु के किसानों के अनुरोध को ध्यान में रखते हुए इस विचाराधीन विशय में उन्हें अस्थायी रूप से राहत देने की कोशिश की। इस पर कर्नाटक में इसका तीव्र विरोध हुआ और वहां तमिलों के खिलाफ हिंसात्मक घटनाएं घटीं। हालांकि यह मात्र एक अंतरिम आदेश था, पर कर्नाटक के लोगों को लगा कि ट्रिब्युनल ने एक ऐतिहासिक अन्याय पर कानूनी मुहर लगा दी है। उधर तमिलनाडु में भी इन सब बातों की प्रतिक्रिया उग्र रूप धारण करने लगी। दोनों प्रदेशों के आपसी संबंध अपने न्यूनतम स्तर पर गिर गए थे। और यह प्रांतीय विवाद भारतीय संविधान के ढांचे को ही हिलाने लगा।

खुशकिस्मती से यह उग्र रूप फिर कुछ शांत हुआ। सन् 1991 में फैली हिंसा दुबारा नहीं भड़की। पर आने वाले सालों में वातावरण तो तनावपूर्ण ही बना रहा। दोनों प्रदेशों के बीच संबंध अक्सर बेहद नाजुक हो जाते और भंगुर नजर आते रहे। पांच में से चार सालों के दौरान जब दोनों राज्यों की भूमि पर पर्याप्त मात्रा में बारिश हुई तो कुल मिलाकर सब ठीक-सा ही रहा। पर कम बारिश के सालों में हर वक्त ऐसा लगता रहा कि अब फिर से एक महासंग्राम छिड़ जाने की आशंका है।

फरवरी 2007 में ट्रिब्युनल ने अपना अंतिम निर्णय घोशित किया। पर दोनों ही प्रदेशों ने उसे पूरी तरह से स्वीकार नहीं किया है। दोनों ने ही ट्रिब्युनल के तौर-तरीकों के तहत उसके इस आदेश के स्पश्टीकरण हेतु अपनी-अपनी ओर से याचिकाएं भेजी हैं। साथ-साथ उन्होंने उच्चतम न्यायालय में भी 'स्पेशल लीव पीटिशन' दर्ज की है। इन सभी याचिकाओं पर ट्रिब्युनल व कोर्ट द्वारा कौँ निर्णय अभी तक लिया नहीं गया है। कुल मिलाकर कानूनी स्तर पर मामला लटका हुआ है। इस सब में केरल व पुदुचेरी के लिए भी कौँ स्पश्ट समाधान नहीं हो सका है। हालांकि ये दो पक्ष इस समस्या से उस हद तक प्रभावित नहीं हैं जितना कि दोनों मुख्य पक्ष-कर्नाटक और तमिलनाडु हैं। दो मुख्य और दो गौण पक्ष-चारों ही न्याय के दरवाजे पर बैठे हैं बस।

आज स्थिति यह है कि इस असमंजस से (कावेरी जलविवाद) सभी पक्ष व्याकुल हैं। दो मुख्य पक्ष कर्नाटक तथा तमिलनाडु, दोनों ही प्रदेशों में इस विषय पर सही जानकारी रखने वाले लोगों को भीतर ही भीतर साफ मालूम है कि कावेरी का पानी आखिर अनंत तो नहीं है, वह तो सीमित है, उसका किसी भी प्रकार का बंटवारा हो, उसमें दोनों प्रदेशों को असीम विकास की मृगतृष्णा को समझदारी से त्याग कर यथार्थ से समझौता तो करना ही पड़ेगा। यह अहसास भी है कि ऐसा करना कोई दुखद बात नहीं होगी, क्योंकि बड़े बांध इत्यादि के निर्माण को छोड़कर जल संचयन जैसे कई अन्य व्यावहारिक विकल्प हैं, जिनसे वर्तमान स्थिति के मुकाबिले उतने ही पानी से कहीं अधिक लाभ पाया जा सकता है, और यह सब परस्पर हित व संबंध की नजर से ज्यादा फायदेमंद होंगे। पर आज दोनों प्रदेशों में इस विषय को लेकर इतनी कटुता व अविश्वास का वातावरण है कि कोई यदि ऐसा खुलकर सार्वजनिक सभा में या अखबारों-पत्रिकाओं में कहे, तो उसे अपने-अपने प्रदेश के हित के विषय में गद्दार बता दिया जाएगा। इस मुद्दे पर प्रदेश में और उनके बीच राजनीति का खेल कुछ ऐसा ही खेला जा रहा है। दोनों ही जगह लोग भड़काए जा रहे हैं और विषय का असली स्वरूप उनके सामने नहीं रखा जा रहा है।

यह तो हुई गतिरोध और विवाद की पृष्ठभूमि। इसी पृष्ठभूमि में अमन और परस्पर समझ का बीज बोने के प्रयासों का भी एक अपना इतिहास है। सन् 1991-92 में जब माहौल बहुत बुरी तरह से बिगड़ गया था तब कई समाज सेवकों व बुद्धिजीवियों ने इस जटिल समस्या को किसी दूसरे तरीके से सुलझाने के रास्ते खोजने शुरू किए। मद्रास इंस्टिट्यूट ऑफ डेवलपमेंट स्टडीज के स्वर्गीय डा. एस. गुहन ने इस दिशा में पहल की। उनकी अगुवाई में अनेक स्थानों पर सार्वजनिक सभाएं आयोजित की गई, जहां दोनों प्रदेशों से व समाज के अलग-अलग क्षेत्रों से समस्या पर गौर करने की इच्छा रखने वाले लोग एकत्रित हुए और उन सभी ने खुले मन से एक-दूसरे की बातों व मुद्दों को सुनने और समझने की कोशिश की। इसका प्रभाव पड़ा। धीरे-धीरे अखबारों व पत्रिकाओं में इस नए आयाम के बारे में थोड़ा-थोड़ा जिक्र भी होने लगा। अब तक दोनों प्रदेशों के अखबारों, पत्रिकाओं, टी.वी. आदि में एक तरह की जो अघोषित सेंसरशिप सी लगी थी, वह कुछ ढीली पड़ने लगी

थी। लेकिन अफसोस कि शुरु की ये कोशिशें रफ्तार नहीं पकड़ पाईं और डा. गुहन का अकाल निधन हो जाने पर ऐसा लगा जैसे कि उनकी यह सदिच्छा, सद्भाव व समभाव भी अपनी आखिरी सांस ले चुका है।

पर यह तो हम सबका सद्भाव ही था कि ऐसा नहीं हो पाया। यह मात्र एक शुरुआत थी और इसके महत्व का सही अनुमान समाज को आने वाले सालों में दिखने वाला था। केन्द्र सरकार में लंबे समय तक जल-संसाधन सचिव रह चुके श्री रामस्वामि आर. अययर ने सन् 2002 में बेंगलुरू में बुद्धिजीवियों व तकनीकी विशेषज्ञों की एक बैठक आयोजित की। इस विषय पर प्रकाश डालने के लिए उन्होंने भी अखबारों-पत्रिकाओं में कई लेख लिखे। इन सब प्रयासों ने समस्या को राजनीति व कोर्ट-कचहरी के भयानक दलदल से निकालकर उसे विवेक के खुले आंगन में रखने की चेष्टा की।

इन सभी प्रारंभिक प्रयासों की बुनियाद पर रचाया जाने वाला था कावेरी परिवार। पर वह अब भी एक ऐसी विभूति की प्रतीक्षा कर रहा था जो कि इस समस्या के समाधान को अपना ध्येय समझ उसे एक चुनौती के रूप में स्वीकार करें।

डॉ. एस जनकराजन के रूप में यह सज्जन सामने आए। और यह उचित ही था कि वे भी उसी संस्था, एम.आई.डी.एस. से जुड़े थे, जहां से इस कहानी की शुरुआत हुई थी। कावेरी की समस्या पर अपना ध्यान लगाने से पहले उन्होंने पालार नदी द्रोणी में कुछ ऐसा ही काम शुरू किया था। इसमें उन्होंने उस नदी के जल के उपयोग से सरोकार रखने वाले दोनों किनारों पर बसे सभी पणधारियों को संगठित किया। उन सबके बीच नदी से जुड़ी हर बात पर, हरेक विवाद पर आपसी संवाद प्रारंभ करवाया। यह प्रयास यद्यपि कावेरी की तुलना में बहुत छोटे पैमाने का था, फिर भी इससे सामने आए अनुभव उनके लिए कावेरी समस्या से जूझने में बहुत लाभप्रद रहे।

आज से करीब 6 वर्ष पहले सन् 2003 में जनकराजन जी ने कावेरी पर प्रयास शुरू किए। उन्होंने कावेरी नदी द्रोणी के किसानों की पहली बड़ी बैठक आयोजित की। इसमें कर्नाटक तथा तमिलनाडु के किसान अपने बीच खड़े किए गए सारे झगड़ों को अलग रखकर पहली बार सद्भावना और मैत्री के वातावरण में एक दूसरे से मिले। इस अनोखे मेल का मनोभाव यह था कि हम दोनों कावेरी मां के बेटे-बेटी हैं। इसी दौरान समाधान प्रयास के लिए कावेरी परिवार जैसा सुंदर शीर्षक भी पहले लोगों के मनों में फिर कागजों में भी अपनाया जाने लगा।

कई साल बीत चुके हैं और इस बीच दोनों प्रदेशों के इन कृषकों के लिए कावेरी के जल की उपलब्धि के चित्र में समय और मौसम के अनुसार वही रूपांतर आते रहे हैं जो पहले से आते रहे थे, पर उनकी आपसी मैत्री वैसी ही बनी रही है, यह अपने आप में एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है। यह परिवार अपने विवादों को ताक पर रखकर कई बार बेंगलुरू, चेन्नई तथा इन महानगरों के अलावा दोनों प्रदेशों के अन्य छोटे शहरों में भी एकत्रित हुआ है। यहां किसानों की आवाज को प्राथमिकता दी गई है। डॉ.जनकराजन तथा प्रो. रामस्वामि अय्यर जैसे अन्य शुभचिंतकों व विशेषज्ञों ने भी इस प्रक्रिया में अपनी-अपनी भूमिकाएं निभाई हैं। इन बैठकों के बाद दोनों प्रदेशों के किसान एकदूसरे के गांव भी गए हैं, जिससे उन्हें एक दूसरे की कृषि व जल संबंधी आवश्यकताओं तथा समस्याओं का प्रत्यक्ष रूप से अहसास हुआ है। राजनैतिक स्तर पर कावेरी विवाद अब भी काफी हद तक कठोरता, कट्टरता और प्रांतीय स्वार्थीपन की संकीर्ण भाषा में संचालित किया जा रहा है। फिर भी प्रभावित होने वाले किसानों के बीच, मतभेद होते हुए भी कावेरी नदी की पौराणिक सुसंस्कृत सभ्यता की मिठास और सुगंध आज एक बार फिर उठ चली है।

कोई पूछ सकता है कि क्या यह कावेरी परिवार विवाद का हल निकाल लेगा? यह सच है कि 'कावेरी परिवार' के ये सदस्य विवाद में निर्णयकर्ता होने का अधिकार नहीं रखते हैं। पर दूसरी ओर यह भी अवश्य कहा जाना चाहिए कि उनके इस मैत्रीपूर्ण मेल के अभाव में कौन जाने आज तक कैसा हिंसात्मक और प्रतिकूल वातावरण विकसित हुआ होता।

आज राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर इस सुंदर व अद्भुत प्रयास की चर्चा भी होने लगी है। दोनों प्रदेशों में बाहर से कई पर्यवेक्षक और जिज्ञासु इस अनूठे आंदोलन को देखने समझने आ चुके हैं। संयुक्त राष्ट्र संघ के यूनेस्को के द्वितीय 'वर्ल्ड डेवलपमेंट रिपोर्ट' के पृष्ठों में भी जल संसाधनों के सदुपयोग को एक सहभागी कर्तव्य बताते हुए, उदाहरण के रूप में 'कावेरी परिवार' का जिक्र किया गया है।

कानूनी प्रक्रिया फिलहाल अनिश्चितकाल तक लटके जा रही है। एक-न-एक दिन सरकार को भी अंततः इस पर गौर करके कुछ निर्णय लेने ही पड़ेंगे। क्या कावेरी परिवार के सदस्यों के बीच यह सख्य, सहयोग और संवाद उस निर्णय के आ जाने के बाद भी बुलंद रहेगा? शायद इसका अनुमान लगाना इस वक्त संभव नहीं है। यह हम सबका दायित्व बनता है कि हम इस प्रयास को और मजबूत व कारगर बनाने में अपना योगदान दें और देश, बल्कि समस्त विश्व के समक्ष इसे एक आदर्श उदाहरण के रूप में प्रस्तुत करें। यदि गांधीजी आज हमारे बीच होते तो वे निश्चित रूप से यही कहते और यही करते। (सप्रेस)

महादेवन रामस्वामि सामाजिक विषयों पर प्रेरक फिल्में बनाते हैं। मातृभाषा तमिल, कामकाजी भाषा अंग्रेजी होते हुए भी यह उनका हिन्दी में लिखा गया पहला लेख है।

माइक्रोफाइनेंस का भ्रमित अर्थशास्त्र-II

माइक्रो फाइनेंस से गरीबी उन्मूलन : एक सपना

बलबीर जैन

'माइक्रो फाइनेंस गरीबी उन्मूलन का प्रभावी तरीका है'- यह एक मिथक है और इस विषय में माइक्रो फाइनेंस के प्रभावशाली पैरोकार और वर्ल्ड बैंक के थिंक टैंक 'सी गैप' की स्वीकारोक्ति भी तीन साल पहले आ चुकी है। इस मिथक को सत्य मानने वाले नीतिकारों की आज भी कमी नहीं है। केंद्र और बिहार, उत्तर प्रदेश सहित सभी राज्यों के सरकारी तंत्र पर आज भी यह मिथक पूरी तरह हावी है और इसका बखूबी अनुकरण हो रहा है। आखिर इस मिथक की इतनी गहरी पैठ क्यों है?

थिंक टैंकों की भूमिका

इस मिथक की प्रतिस्थापना में शोधकर्ताओं, विशेषकर थिंक टैंकों से जुड़े शोधकर्ताओं की निर्णायक भूमिका रही है। माइक्रो फाइनेंस पर एक विशेष जमात के शोधकर्ताओं के गैर स्तरीय शोध पत्र उच्च स्तरीय शोध पत्रिकाओं में जिस तरह प्रकाशित होते रहे हैं, उससे कुछेक अंतरराष्ट्रीय शोध पत्रिकाओं के, विशेषकर विकासशील देशों की समस्याओं के प्रति वस्तुपरक होने पर संदेह होने लगता है। माइक्रो फाइनेंस पर कई ऐसे पेपर किन्हीं विश्व स्तरीय पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहे हैं जो कि निष्पक्ष अकादमिक जांच की कसौटी पर खरे नहीं उतरते हैं। हम ऐसे कुछ अत्यंत प्रभावशाली पर स्तरहीन शोध पत्रों की समीक्षा करेंगे।

खोखले दावे पर विश्व स्तरीय प्रकाशन

सर्वप्रथम हम जर्नल ऑफ इकोनॉमिक लिटरेचर के दिसंबर 1999 के अंक में प्रिंसटन विश्वविद्यालय के प्रोफेसर मोरडक के 'दि माइक्रो फाइनेंस प्रॉमिस' नामक पत्र की चर्चा करेंगे। गौरतलब है कि इसके प्रारंभिक भाग से ही भ्रांत व्याख्या की झलक सामने आ जाती है। प्रॉमिस का मतलब है- वादा। इसके अनुसार इस काम का होना - माइक्रो फाइनेंस द्वारा गरीबी उन्मूलन होना- निश्चित है। पर पत्र के दूसरे पैराग्राफ में विद्वान शोधकर्ता लिखते हैं कि उम्मीद 'होप' है कि अल्प आय वर्ग के परिवारों को वित्तीय सेवाएं मुहैया कराने से बहुत बड़ी मात्रा में गरीबी का उन्मूलन किया जा सकता है। 'दावा' और 'उम्मीद' दोनों शब्द एक-दूसरे कें पर्याय नहीं हैं। इनके विनिमय पूर्वक प्रयोग से पत्र में व्यक्त धारणाओं में बुनियादी और अत्यंत महत्वपूर्ण विरोधाभास सामने आ जाता है, जिससे इस शोधकृति के स्तरीय होने पर एक प्रश्नचिह्न लग जाता है। जर्नल ऑफ इकोनॉमिक लिटरेचर एक प्रतिष्ठित विश्वस्तरीय जर्नल है और इसमें इसके गैर स्तरीय पत्र का प्रकाशन अविश्वसनीय लगता है।

इस पत्र का ताना-बाना भी अविश्वसनीय धारणाओं द्वारा बुना गया है। प्रारंभिक पैराग्राफ में यह विचार व्यक्त किया गया है कि बहुत सारे लोग अब यकीन करते हैं कि गरीबों को दी गई सरकारी इमदाद से निर्भरता और काम के प्रति निरुत्साह की भावना पनपती है, जिससे मामला (गरीबी की समस्या) बिगड़ता ही है, स्थिति सुधरती नहीं है। दरअसल, यह नवउदारवादियों की कल्याणकारी राज्य के विरुद्ध प्रमुख दलील रही है। पर इसकी सत्यता नितांत संदेहास्पद है। गौरतलब है कि सांख्यिकीय शोध तरीकों पर आधारित कई विश्वस्तरीय शोध पत्रों में इस प्राक्कल्पना (हाईपोथेसिस) की सत्यता के परीक्षण के आधार पर निष्पक्ष विशेषज्ञों की राय है कि यह दलील तथ्यहीन है। यह विषय विकसित देशों की नीति निर्धारण से जुड़ा है और इस पर स्तरीय शोध पत्र ही विश्व स्तरीय जर्नलों में प्रकाशित हो पाते हैं। इनके निष्कर्ष नवउदारवादी चिंतन से बिल्कुल जुदा है और इनसे छेड़छाड़ करना लगभग नामुमकिन है। दूसरी ओर इन्हीं जर्नलों में अल्पविकसित देशों में नवउदारवादी चिंतन को पुष्ट करने के लिए इस विचार के अनुरूप स्तरहीन पत्रों का प्रकाशन बखूबी किया जाता है। तो क्या अल्पविकसित देशों के मामले में विश्व स्तरीय जर्नल प्रकाशन का अपेक्षित स्तर बनाए रखना जरूरी नहीं समझते हैं।

इसी शोध पत्र में यह दावा किया गया है कि माइक्रो फाइनेंस के लगभग सभी कर्जदार स्वरोजगार से जुड़ी गतिविधियों की वित्तीय आवश्यकताओं के लिए ही कर्ज लेते हैं। इस पहलू की हम इस लेख के पहले भाग में विस्तृत चर्चा कर चुके हैं, जिससे इस दावे का खोखलापन साबित हो चुका है। इस संदर्भ में गौरतलब है

कि विद्वान लेखक ने 1999 में प्रकाशित इस शोध पत्र में माइक्रो फाइनेंस का इस्तेमाल स्वरोजगार की सुविधाएं हासिल करने का दावा या तो बिना तथ्यात्मक जानकारी के किया है या इस विषय में तथ्यों को अनदेखा किया है। गौरतलब है कि इस पत्र के लेखक प्रोफेसर मोरडक, वित्तीय समावेश पर 2009 में प्रिंसटन यूनिवर्सिटी प्रेस द्वारा प्रकाशित बहुचर्चित 'पोर्ट फोलिओस ऑफ द पुअर' पुस्तक के सह लेखक भी हैं। इस पुस्तक का एक प्रमुख निष्कर्ष यह है कि माइक्रो फाइनेंस का एक छोटा सा हिस्सा ही स्वरोजगार संबंधी गतिविधियों पर इस्तेमाल किया जाता है, क्यों इसके अवसर इतने सीमित हैं।

यह पुस्तक बांग्लादेश, भारत और दक्षिण अफ्रीका के 250 से ज्यादा गरीब परिवारों की वित्तीय डायरियों पर आधारित है और इन डायरियों के संकलन का समय 1999 से 2004 था। कुल मिलाकर यह स्पष्ट है कि माइक्रो फइनेंस द्वारा स्वरोजगार सर्जन के दावे भ्रामक हैं क्योंकि ये वस्तुस्थिति पर आधारित नहीं हैं। यही नहीं, लगता है कि वस्तुस्थिति की सही तरीके से समझने का प्रयास भी नहीं किया गया है। कई दशकों से विभिन्न विश्वविद्यालयों में भारतीय अर्थव्यवस्था का अध्ययन पाठ्यक्रम का हिस्सा रहा है और इसका एक हिस्सा ग्रामीण इलाकों में विशेषकर गरीब लोगों की ऋणग्रस्त रहने की समस्या से जुड़ा है और कई दशकों से इस विषय की पाठ्य पुस्तकों की परिपाटी के अनुरूप कर्ज एक बहुत बड़ा बोझ है। यह बोझ ही बहुत से परिवारों के गरीबी के दुष्चक्र में धंसने का एक प्रमुख कारण है। पर नवउदारवाद के प्रचारतंत्र से प्रभावित भारतीय नीतिकारों ने पाठ्य पुस्तकों में व्यक्त वस्तुस्थिति को लगभग नकार दिया है।

यही नहीं नवउदारवाद के प्रचार तंत्र का असर इस विषय मे सच्चाई उजागर होने के तीन साल बाद भी पूर्ववत बरकरार है। उनकी नजर में माइक्रो फाइनेंस गरीबी उन्मूलन का कारगर तरीका है चाहे कि माइक्रो फाइनेंस के पैरोकारों ने इस दावे से अपना पल्ला झाड़ लिया है।

माइक्रो फाइनेंस के पैरोकार अब यह मानते हैं कि माइक्रो फाइनेंस का इस्तेमाल प्रमुख तौर पर उपभोग संबंधी आवश्यकताओं, इलाज, धार्मिक और सामाजिक उत्सवों पर होता है। यह निष्कर्ष भारतीय अर्थव्यवस्था पर पाठ्य पुस्तकों की दशकों से चली आ रही परिपाटी के अनुरूप है। इस वस्तुस्थिति को तीस साल बाद माना गया है। यह कहा जा सकता है कि नवउदारवादी आवरणों की परतें तीस वर्ष बाद ही हट पाई हैं। इस दौरान कई संरचनात्मक परिवर्तन हुए हैं, जिनसे एक भयावह तस्वीर उभर आई है। नवउदारवादी वर्चस्व के कारण भारत में कल्याणकारी संस्थाओं को तहस-नहस कर दिया गया है। सरकारी क्षेत्र के स्कूलों और अस्पतालों के ह्रास की प्रक्रिया एक नियोजित तरीके से अमल में लाई गई है। लाभ से प्रेरित निजी अस्पतालों, स्कूलों, कॉलेजों आदि का कुकुरमुत्तों की भांति तेजी से विस्तार बदस्तूर जारी है। परिणामस्वरूप देश की अस्सी फीसदी आबादी को इलाज और शिक्षा की समुचित सुविधाओं से वंचित कर दिया गया है।

यही नहीं, खाद्य पदार्थों और कुछेक आवश्यक वस्तुओं के वितरण हेतु सार्वजनिक वितरण सुविधाओं मे लगातार ह्रास किया गया है। नवउदारवादी एजेंडा पूरी तरह अमल में लाया जा चुका है और इसमें माइक्रो फाइनेंस से जुड़े आधारहीन दावों की अहम भूमिका रही है। इस भाग में हमने नवउदारवाद के प्रचारतंत्र की जड़ें काफी व्यापक हैं और इसमें अति सुविज्ञ सांख्यिकीय तरीकों पर आधारित शोध निष्कर्षों का भी भरपूर उपयोग किया गया है।

इन शोध निष्कर्षों की मदद से एक ऐसे व्यूह की रचना की गई है, जिससे जनमानस आज भी पूरी तरह निकल नहीं पाया है।

(क्रमशः)

●

मानव निर्मित बाढ़ की विनाशलीला

हिमांशु ठक्कर

(मध्यप्रदेश के बाणसागर बांध से एकाएक भारी मात्रा में पानी छोड़े जाने और फरक्का बांध की वजह से संपूर्ण गंगा में गाद के जमने से बिहार और उत्तरप्रदेश को इस वर्ष अभूतपूर्व बाढ़ का सामना करना पड़ा है। यदि विवेकपूर्ण निर्णय लिए जाते तो जान-माल की इस भारी क्षति को रोका जा सकता था।)

विगत 21 अगस्त 2016 की सुबह गंगा नदी का जलस्तर लगातार बढ़ते हुए, पटना में 50.43 मीटर पर पहुंच गया। यानी वह पहले के उच्चतम बाढ़ स्तर 50.27 मीटर से 16 सेंटीमीटर ऊपर बह रही थी। 22 अगस्त 2016 तक पानी का जलस्तर गंगा नदी के किनारे तीन अन्य स्थानों बलिया (उत्तरप्रदेश), हाथी दाह एवं भागलपुर (बिहार) में उच्चतम बाढ़ का रिकार्ड तोड़ने के बाद अब यह बाढ़ गंगा नदी के किनारे बसे बिहार और उत्तरप्रदेश के अन्य इलाकों तक पहुंच गई। उल्लेखनीय है कि बिहार में तब तक वर्षा औसत से 14 प्रतिशत कम हुई थी। तो फिर गंगा में रिकार्ड तोड़ने वाली बाढ़ क्यों आयी।

इस दौरान बिहार के अनेक जिले बाढ़ की चपेट में आए और कम से कम 10 लाख लोग प्रभावित हुए और 2 लाख लोगों को विस्थापित होना पड़ा। कई लोग जान गंवा चुके हैं। सिर्फ इस सबसे ऐसा प्रतीत होता है कि यह बाढ़ सालाना तौर पर आने वाली बाढ़ों जैसी ही प्राकृतिक आपदा है। परंतु यह बात नहीं है। बिहार और उत्तरप्रदेश में इस दौरान आई अभूतपूर्व बाढ़ में दो बांधों की मुख्य भूमिका है। पहला बांध है, मध्यप्रदेश में सोन नदी पर बना बाणसागर बांध और दूसरा पश्चिम बंगाल में गंगा नदी पर बना फरक्का बांध जिसे गलती से बैराज का दर्जा दिया गया है। अगर बाणसागर बांध का समुचित प्रबंधन किया जाता तो इससे 10 लाख क्यूसेक से अधिक पानी छोड़ने की नौबत ही नहीं आती। जैसा कि बिहार सरकार ने भी इंगित किया।

बिहार के मुख्यमंत्री नीतिश कुमार ने बताया कि बिहार में बाढ़ की दूसरी वजह फरक्का बांध है। बिहार सरकार के सुझाव पर 21 अगस्त 2016 की शाम को फरक्का बांध के कुछ गेट खोल दिये गए। (किंतु अभी इसकी पुष्टि की जानी हैं) उन्होंने एक बार फिर कहा कि फरक्का बांध के कारण इससे ऊपरी इलाकों में जलनिकासी प्रणाली अवरूद्ध हुई है, बांध की वजह से गंगा नदी तल में गाद जमा होने से तल ऊपर उठा है और साथ ही इसके जलबहाव क्षमता में कमी आयी है।

नीतिश कुमार लंबे अरसे से फरक्का बांध की उपयोगिता का स्वतंत्र मूल्यांकन करने और इसे हटाने की बात भी उठा रहे हैं। उन्होंने राष्ट्रीय गाद प्रबंधन नीति बनाने की मांग भी उठाई जो कि अभी तक भारत में नहीं बनी है। उनकी ये सभी मांगें जायज है। हालिया समय में उन्होंने प्रधानमंत्री को भी इस मुद्दे से अवगत कराया है। परंतु ऐसा प्रतीत होता है कि केंद्र सरकार इस और बिल्कुल ध्यान नहीं दे रही है।

मध्यप्रदेश जल संसाधन विभाग की अधिकारिक वेबसाइट के अनुसार शहडोल जिले में सोन नदी पर बने बाणसागर बांध के जलाशय का अधिकतम स्तर 341.64 मीटर और कुल जलाशय क्षमता 5429.6 मिलियन (1 मिलि. 10 लाख) क्यूबिक मीटर है। मध्यप्रदेश में नर्मदा नदी पर बने इंदिरासागर और चंबल नदी पर बने गांधीसागर के बाद बाणसागर तीसरा बड़ा जलाशय है। इन बांधों को केवल मानसून के अंतिम चरण में पूरा भरा जा सकता है। साथ में मानसून के दौरान जब इन बांधों के निचले इलाकों में तेज बारिश व अन्य कारणों से पहले ही बाढ़ आई हो तो ऐसे समय में इन बांधों से पानी की निकासी नियंत्रित तरीके से कि जाती है ताकि बाढ़ की स्थिति त्रासदी में ना बदले।

फिर भी,19 अगस्त 2016 की सुबह 8 बजे तक बाणसागर बांध का जलस्तर 341.33 मीटर पहुंच गया। इस स्तर पर जलाशय में 5169.2 मिलियन क्यूबिक मीटर पानी था, जोकि इसकी कुल जलाशय क्षमता का 95.22 प्रतिशत है। इसके बाद इस बांध में बहुत कम मात्रा में पानी भरा जा सकता है। इसके बावजूद 18 अगस्त 2016 की शाम 5.30 बजे तक इस बांध से छोड़ा गया पानी आवक से बहुत कम था। 19 अगस्त की सुबह 7 बजे ही, बांध के 18 में से 16 गेटों को खोलकर, अचानक 15798 क्यूसेक पानी छोड़ दिया गया। पहले से ही भारी बारिश से प्रभावित पटना समेत बिहार और उत्तरप्रदेश के अनेक इलाकों में, इतनी बड़ी मात्रा में पानी छोड़ने के कारण अप्रत्याशित बाढ़ आई। यदि बाणसागर बांध के जलाशय को इतना ना भरा तो बाढ़ग्रस्त निचले इलाकों में, इतना ज्यादा पानी छोड़ने की नौबत ही ना आती। और लाखों लोगों को प्रभावित करने वाली गंगा की अभूतपूर्व बाढ़ को टाला जा सकता था।

जब भी हम, बांधों द्वारा निचले इलाकों में कृत्रिम बाढ़ की स्थिति से बचने के लिए बांध से समय रहते पानी छोड़े जाने की बात कहते हैं तो कहा जाता है कि बाद में बारिश ना होने की दशा में अग्रिम तौर पर छोड़े गए पानी की बर्बादी की भरपाई कैसे होगी। परंतु इस साल ऐसी अवस्था नहीं है। पूर्वी मध्यप्रदेश में दक्षिण पश्चिमी मानसून आधारित वर्षा पहले ही सामान्य से अधिक है। बांध से नीचे ही जलागम क्षेत्र का दायरा 50 हजार वर्ग किलोमीटर से अधिक है। इसके अतिरिक्त भारतीय मौसम विभाग द्वारा पूर्वी मध्यप्रदेश में भारी बरसात की चेतावनी पहले ही जारी की जा चुकी थी। जिसे 19 अगस्त की सुबह तक गंभीरता से नहीं लिया गया।

जून 2016 में जब बाणसागर बांध भरना शुरू हुआ तो इसमें पहले से ही 1808.58 मिलियन क्यूबिक मीटर की मात्रा में पानी मौजूद था। गौरतलब है कि सन् 2015-16 सूखा वर्ष था, बावजूद इसके वर्षांत तक बाणसागर बांध में कुल जलाशय क्षमता का 33.3 प्रतिशत से अधिक जल अनुपयोगी रहा। यदि इतने पानी का सूखे के दौरान उपयोग किया जाता तो इसके दोहरे लाभ होते एक तो बाणसागर बांध में 1800 मिलियन क्यूबिक मीटर वर्षाजल भरने की जगह होती और दूसरे, निचले इलाकों में छोडे ़गये पानी की मात्रा को कम किया जा सकता था। जिससे बाढ़ की मारक क्षमता में निश्चित तौर पर कमी होती।

यहां तक कि वर्ष 2015-16 के दौरान इस बांध पर तीन चरणों में बने 405 मेगावाट की जलविद्युत परियोजना से मात्र 721.84 मिलियन यूनिट बिजली बनी। जो कि वर्ष 2014-15 में उत्पादित 1388.5 मिलियन यूनिट बिजली का लगभग आधा थी। केंद्रीय ऊर्जा प्राधिकरण के अनुसार 2014-15 में हुआ 1388.5 मिलियन यूनिट बिजली उत्पादन भी पिछले दो वर्षों की तुलना में 30 फीसदी कम था। इस आर्थिक वर्ष के पहले चार माह भी बाणसागर बांध से जलविद्युत उत्पादन केवल 161.13 मिलियन यूनिट था जो कि पिछले वर्ष 2015-16 की उसी की अवधि के दौरान उत्पादित 299.05 मिलियन यूनिट से बहुत कम है। अतएव बिजली का कम उत्पादन अर्थव्यवस्था का बहुत बड़ा नुकसान है परंतु ऐसा क्यों हुआ?

सक्रिय मानसून के 6 सप्ताह पहले ही बाणसागर बांध की जलाशय क्षमता को 19 अगस्त 2016 में सुबह 7 बजे 96 प्रतिशत तक क्यों भर दिया गया।

सवाल उठते हैं। बिहार और उत्तरप्रदेश में आई इस अनावश्यक मानव निर्मित बाढ़ से हुए नुकसान का जिम्मेदार कौन है। इस दिशा में अब तक क्या कार्यवाही की गई है।

क्या बाणसागर जलाशय को भरने के लिए कोई नियम बने हैं। इन नियमों का पालन ना होने के लिए कौन दोषी है।

सूखे के वर्ष में भी 1800 मिलियन क्यूबिक मीटर उपलब्ध जल का उपयोग क्यों नहीं हुआ।

2015-16 में वर्ष के अंत तक भी पर्याप्त पानी होने के बावजूद बांध से इतनी कम मात्रा बिजली उत्पादन क्यों हुआ।

मध्यप्रदेश सरकार ने इस विफलता की जांच के लिए और दोषियों को जवाबदेह बनाने के लिए क्या कदम उठाए हैं। बिहार और उत्तरप्रदेश को मिलाकर बनाई गई विशिष्ट अंतर्राज्यी बाणसागर बांध समिति ने इस मसले में अब तक क्या कार्यवाही की है।

बाणसागर संचालन समिति के अध्यक्ष के तौर पर मनोनीत, केंद्रीय जल संसाधन मंत्री ने क्या कदम उठाए हैं। केंद्रीय जल आयोग ने इस दिशा में क्या प्रयास किए हैं। केंद्रीय जल आयोग के अध्यक्ष सन् 1973 में गठित बाणसागर संचालन समिति के क्रियान्वयन समूह के अध्यक्ष होते हैं।

उपरोक्त तथ्यों से स्पष्ट है कि बाणसागर बांध संचालन में लापरवाही और फरक्का बांध द्वारा गंगा नदी की जल निकासी में कमी एवं गाद जमा होने से नदी तल में वृद्धि होने से इस वक्त बिहार और उत्तरप्रदेश ने अनावश्यक बाढ़ की त्रासदी झेली। बाणसागर बांध के संचालन में बरती लापरवाहियां केवल निष्पक्ष जांच से ही उजागर हो सकती है। दुर्भाग्य से हमारे यहां ना तो ऐसी जांच होती है ना ही ऐसी लापरवाहियों के लिए जवाबदेही निर्धारित की जाती है। जिसकी वजह से भविष्य में ऐसी मानव निर्मित बाढ़ त्रासदियों का बढ़ना जारी रहेगा। फरक्का बांध की उपयोगिता, कीमत, लाभ और ऊपरी एवं निचले क्षेत्रों में इसके प्रभाव को लेकर हमें जल्द एक स्वतंत्र और निष्पक्ष मूल्यांकन करने की सख्त आवश्यकता है। इसके संचालन ढ़ाचे को हटाने के विकल्पों को भी इस मूल्यांकन के दायरे में रखना चाहिए। आज भी हम हमारी नदियों और नदीतंत्र की कार्यप्रणाली में गाद के महत्व को समझते नहीं हैं। जिसकी अनदेखी करने से हमारी नदियों एवं नदीतंत्र पर बहुत बुरा असर हो रहा है। गाद का हमारी नदियों और नदीतंत्र के माध्यम से डेल्टा में ना पहुंचने की वजह से डेल्टा क्षेत्र संकुचित एवं जलविलीन हो रहे हैं। इससे एक तरह जहां डेल्टा क्षेत्र गाद की आपूर्ति से वंचित है, दूसरी ओर यही गाद नदी तल और बांधों में जमा होकर भारी नुकसान कर रही है।(सप्रेस) ●

■ *श्री हिमांशु ठक्कर शोधकर्ता हैं तथा बांधों, नदियों और लोगों के दक्षिण एशियाई नेटवर्क से जुडे ़हैं।*

पीरो के गाँधी- राम एकबाल वरसी का न रहना

चन्द्र भूषण चौधरी

साथी राम एकबाल सिंह उर्फ राम एकबाल वरसी का जन्म बिहार में तत्कालीन आरा जिले के पीरो के पास वरसी गाँव में एक गरीब और कम शिक्षा वाले यादव परिवार में 1923 में हुआ था। प्राथमिक शिक्षा के बाद उन्हें डालमिया नगर के एक कारखाने में मजदूरी करनी पड़ी। भारत छोड़ो आन्दोलन में शरीक होकर जेल गए और आजीवन पूर्णकालिक राजनीतिक कर्म किया। शुरु से ही समाजवादी धारा में रहे। कालान्तर में डा. राम मनोहर लोहिया से प्रभावित होकर उनके द्वारा स्थापित सोशलिस्ट पार्टी – बाद में संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी के कार्यकर्त्ता रहे। पश्चिमी बिहार में भोजपुर क्षेत्र के चार जिलों– आरा, बक्सर, सासाराम और कैमूर में उनके व्यापक प्रभाव में सैकड़ो युवा 50 से 90 तक के चार दशकों में समाजवादी राजनीति के कार्यकर्त्ता बने। उस इलाके की पिछड़ी और अगड़ी जातियों में राजनीतिक चेतना और नेत्रित्व निर्माण उनके जीवन की महत्वपूर्ण उपलब्धि है।



उनके जुझारूपन, सादगी और सिविल नाफरमानी आंदोलनों के अनूठे प्रयोगों से प्रभावित होकर डा। लोहिया ने उन्हें 'पीरो का गांधी'' की उपाधि दी थी। औपचारिक शिक्षा न होने पर भी वे बड़ी संख्या में परचे लिखते थे और उन्हें बाँटते थे। उनकी मौलिकता, उनके सुन्दर और सहज राजनीतिक वाक्य लोगों को मोह लेते थे क्योंकि उनमें समता की सुगन्ध होती थी।

1972 में नोखा में राजनीतिक अपराधियों द्वारा किए गए हत्या कांड के विरुद्ध एक सत्याग्रह में पुलिस ने उन्हें गिरफ्तार किया। थाना ले जाने के लिए गाड़ी न लाने पर वे उछलकर दरोगा के कंधे पर सवार हो गए और कहा कि तुम्हीं मुझे थाना ले चलोगे। एक बार आरा में ट्रेन में रोशनी नही होने पर उन्होंने गार्ड को नीचे खींच कर ट्रेन ही रोक दी।

करुणा झा और मेरा परिचय उनसे किशन जी द्वारा 1972 में सं सो पा सम्मलेन में हुआ। उसी समय तत्कालीन सं। सो.पा. की गुटबाजी से हटकर कुछ समाजवादी नेताओं ने 'लोहिया विचार मंच'' की स्थापना की। उनमें प्रमुख थे –किशन पटनायक, इंदुमति केलकर, ओमप्रकाश दीपक, राम एकबाल सिंह, केशवराव जाघव और अशोक सेकसरिया। कार्यकर्त्ताओं में बिहार से शिवानन्द तिवारी, रघुपति, अख्तर हुसेन, करुणा झा, रवींद्र नाथ चौबे, मैं स्वय और महेंद्र दूबे वगैरह जुड़े। अन्य प्रान्तों के युवा अजय खरे वगैरह भी जुड़े। 1980 के दशक में राम एकबाल जी समता सगठन में न जुडकर- सोशलिस्ट पार्टी (लोहिया) में गए। अपने अन्तिम चार दशकों में उन्होंने किसी पार्टी में नही रहकर भी लेखन, जन सम्पर्क किया और बहुत कार्यकर्त्ताओ के मार्ग दर्शक बने रहे।

1969 में वे तराडी-पीरो क्षेत्र से संसोपा विधायक चुने गए और 1972 तक रहे। इस दौरान वे सादगी और विधायको की फिजूल खर्ची रोकने की मानसिकता से विधायक फ्लैट में सरकारी पलंग- सोफा छोड़ कर जमीन पर सोते, बैठते थे। विधानसभा में जनता की आवाज दृढ़ता से उठाने के करण दर्जनों बार उन्हें मार्शल द्वारा उठाकर बाहर किया जाता रहा। लोहिया से उनकी निकटता के कारण अन्य समाजवादी नेता उनसे डरते थे कि उनका

आदर्श से कमतर चरित्र–आचरण कहीं लोहिया की जानकारी में न पहुँच जाय। अपने सहयोगियों – सम्बन्धियों की कोई अनुचित पैरवी या सिफारिश कभी नहीं करते थे और उनकी नाराजगी झेलते थे। कई ओहदेदार नेता-अफसर उन्हें पागल कहते थे।

लोहिया विचार मंच द्वारा बिहार आन्दोलन में जुड़ने के निर्णय के बाद वे पूरी ऊर्जा से उसमे समाहित हो गए। इमरजेंसी के दौरान लोहिया विचार मंच के कई कार्यकत्ता भूमिगत होकर विरोध का काम कर रहे थे। साथी महेंद्र दुबे ने अपने गांव दुबोली में 9 जून 1976 को अपने नवजात बेटे के छठी उत्सव की आड़ में सक्रिय साथियों की सभा बुलाई। पर पुलिस के छापे में राम एकबाल, नीतीश कुमार, रघुपति, महेंद्र दुबे, राधवेन्द्र सिंह आदि उस रात गिरफ्तार कर लिए गए। उस गिरफ्तारी वाली जगह में बिहार सरकार ने बाद में 'अमर बंदी बाग' नामक पार्क बनवाया। अपनी अनेक जेल यात्राओं में हरेक बार उन्होंने जेल के अंदर बन्दियों के अधिकारों के लिए अनूठे और मौलिक सत्याग्रह के प्रयोग किए। करुणा को एक बार उन्होंने बताया कि वे अपने दुबले पतले पर स्वस्थ शरीर के हरेक अंग और जोड़ की रोज इतनी कसरत- मालिश करते है कि पुलिस की लाठियों के चोट से उन्हें बहुत कम नुकसान हो। दर्ज़नों मुकदमे उन पर चलते रहते थे।

1977 के विधान सभा चुनाव में उन्हें जनता पार्टी का टिकट तराडी क्षेत्र से दिया गया। चुनाव जीतना तो उस आंधी में निश्चित ही था। पर जन प्रतिनिधियों के सत्ता में सीमित समय तक रहने के सिद्धान्त के तहत उन्होंने उसे मना कर दिया – जो बाद में रघुपति गोप को मिला। उनकी मान्यता थी कि जन प्रतिनिधियों को विधायिकाओं संसद के रह्ने के एवज में पेंशन नही लेनी चहिए। इस कारण उन्होंने तीन प्रकार के पेन्शन- क्रमशः स्वतन्त्रता सेनानी, विधायक और बिहार आन्दोलन की जेल यात्रा वाले पेंशनो को लेने से मना कर दिया। इन तीनो की कुल राशि काफी ज्यादा होती और वे अपने परिवार के साथ सुख से रहते। बहुत बाद में बिलकुल अशक्त अवस्था और अपने पुत्र की गरीबी और आग्रह के कारण कुछ वर्षों तक पेन्शन लिया। समाज में क्रन्तिकारी बदलाव की उनकी उत्कट इच्छा रही। यहाँ तक कि वर्ष 1966 के आसपास के कठोर जातीय बन्दिशों वाले बिहार के देहाती समाज में रहते हुए, अपनी बेटी का अन्तर्जातीय विवाह करने की असफल कोशिश में अपने सम्बन्धियों की हिंसा, मार पीट और उग्र विरोध उन्हें झेलना पड़ा। संयोग या पूर्व नियोजित इच्छा के तहत 1955 से पूरे 14 वर्ष वे अपने परिवार से पूरी तरह अलग रहकर भोजपुर इलाके में गाव-गाव पैदल घूमकर क्रन्तिकारी समाजवादी राजनीति फैलाने, समाज सुधार और कार्यकर्ता - सगठन निर्माण का काम करते रहे। उनका और साथियों का रोज का खर्च स्थानीय जनता से भिक्षाटन से ही पूरा होता था। इतने लम्बे दौर में मां, बाप, पत्नी, बेटी से कोई सम्बन्ध नहीं रखा।

दूसरों के लिए उनका मन कितना उदार था यह उनके एक राँची प्रवास में देखा। वे जीवन भर शाकाहारी थे। एक गरीब समाजवादी साथी विनीत राम के घर खाने के निमत्रण में मांस खाने को दिया गया और उन्होंने उसे सहजता से खाया। बाद में जब करुणा ने उनसे पूछा तो कहा कि उसके पास वही खाने को था। शाकाहारी खाना मांग कर उसकी परेशानी बढ़ाना उचित नही होता।

नाम में जातीय सकेतो को हटाने की इच्छा से 70 के दशक में उन्होंने अपने नाम से सिंह शब्द हटाकर अपने गाव का नाम वरसी जोड़ लिया ।

गरीबी के बावजूद पत्नी, दो बच्चो और माता पिता के भरण पोषण के लिए उन्होंने कभी कोई आर्थिक उपार्जन या संग्रह नही किया। स्त्री शिक्षा के प्रति वे उतने सजग थे कि उनके प्रभाव में उनकी भतीजी सुमित्रा ऊँची शिक्षा लेकर और अविवाहित रहकर राजनीतिक कार्य में लगी रही। पर एक दुर्घटना में उसकी युवावस्था में ही असमय मृत्यु हो गई। उनकी पुत्र बधू चौधरी मायावती भी उच्च शिक्षित है और बिहार राज्य महिला कमीशन की सदस्य थी। राची में एक साथी राजदेव सिंह का सहयोग मिला। 90 के दशक में उन्हीं के घर में रहकर पुत्र शिवजी सिंह की कालेज की पढाई हो पाई। पत्नी की मृत्यु उस दौर में ही हो गई थी।

निस्वार्थ क्रान्ति कर्म करने वाले इस 'पीरों के गांधी'' की कोई जीवन गाथा नहीं लिखी गई है। आदर्श समाजवादी सिद्धान्त, सादगी और आचरण को मानते हुए उन्होंने 94 वर्ष के लम्बे जीवन का हरेक पल उसी प्रकार जीने की कोशिश की। कोई जीवनीकार यह लिखे तो गांधी के लिए कहा गया पाठको का यह वाक्य फिर सुनना पड़ेगा- 'क्या सच में ऐसा कोई आदमी इस धरती पर था'।



(पीरो में आयोजित शोकसभा में समाजवादी जन परिषद के साथी चंचल मुखर्जी, सोमनाथ यादव तथा अरुण कुमार बागी ने भाग लिया। साथी चंचल ने रामइकबालजी के प्रिय क्रांति गीत, 'हम सोये वतन को जगाने चले हैं, हम मुर्दा दिलों को जिलाने चले हैं' इस सभा में सुनाया।)

धार्मिक नौकर

राजेन्द्र राजन

मेरे एक पड़ोसी हैं। पेशे से वकील। व्यस्तता, कामयाबी और पैसा उन्हें घेरे रहते हैं। उनके घर में मंदिरनुमा एक कोना है, जहां कई देवी-देवताओं की मूर्तियां प्रतिष्ठापित हैं। कोई पंडितजी उन मूर्तियों की नियमित रूप से विधिपूर्वक पूजा-अर्चना किया करते थे, जिसके बदले में वकील साहब से उन्हें कुछ पारिश्रमिक मिलता था। किसी कारण पंडितजी इस 'नौकरी' को छोड़ गए। तब से उक्त वकील साहब को अपने घर की मूर्तियों की पूजा-अर्चना की चिंता हो आई है। एक दिन उन्होंने मुझसे कोई पुजारी दिलाने का आग्रह किया। मुझे उनकी समस्या बहुत अजीब लगी। ईश्वर है या नहीं, आस्तिक ठीक कहते हैं या नास्तिक, ये विवाद युगों पुराने हैं और बने भी रहेंगे। मगर किसी ऐसे आदमी के लिए, जो ईश्वर या देवी-देवताओं की पूजा-अर्चना में विश्वास करता है, उचित और स्वाभाविक यही जान पड़ता है कि वह खुद पूजा-अर्चना करे। वकील साहब की फरमाइश के जवाब में मैंने कहा भी, 'आप अपने देवी-देवताओं की पूजा-अर्चना खुद क्यों नहीं करते?' उनका जवाब था, 'क्या करें, समय ही नहीं मिलता।'

उक्त वकील साहब का समय एक कामयाब, खासकर पैसे की दृष्टि से कामयाब आदमी का समय है। ऐसे ही लोगों के लिए 'टाइम इज मनी' का जुमला लागू होता है। ऐसा नहीं है कि वकील साहब अपने आराध्य के लिए समय निकाल ही नहीं सकते, मगर समय निकालने पर इसकी जो आर्थिक कीमत उन्हें चुकानी पड़ेगी उसे वे चुकाना नहीं चाहते। यह आजकल की दुनिया में अधिकांश व्यस्तता का राज है। ज्यादातर व्यस्त लोगों की व्यस्तता के पीछे पैसे की माया है। यह माया उनकी आस्था के लिए भी समय निकाल पाने से उन्हें रोकती है। हमारी दुनिया में कुछ धंधे ऐसे हैं जिनमें कामयाबी का मतलब है कि फिर पैसा बहुत तेजी से आता है। ऐसे लोगों को अपनी आस्था के लिए भी समय निकालना बहुत महंगा सौदा मालूम पड़ता है। मगर अपनी आस्था को वे छोड़ भी नहीं सकते, क्योंकि सच तो यह है कि उनकी आस्था उनकी माया का ही एक रूप है। इनके लिए आराधना-प्रार्थना का एक ही उद्देश्य है- सांसारिक सफलताओं के लिए दैवीय कृपा का प्रबंध करना। पूजा या प्रार्थना कोई ऐसी चीज नहीं है जिसे किसी के बदले में कोई दूसरा करे, लेकिन जब वह महज प्रबंध में बदल जाती है तब वह भले ही निरर्थक हो उसका जिम्मा आसानी से औरों को सौंपा जा सकता है।

धनी-मानी और कामयाब लोग- समाज के अधिकतर लोग जिनका अनुकरण करने की कोशिश करते हैं- कैसी-कैसी विडंबनाओं के शिकार रहते हैं, इस पर ज्यादा ध्यान नहीं दिया जाता। घरेलू नौकर और ड्राइवर की तरह वे पारिश्रमिक पर पुजारी भी रखना चाहते हैं। सोचते हैं कि पूजा-अर्चना भले इनके पुजारी करेंगे, मगर दैवीय कृपा उन पर बरसेगी क्योंकि पूजा के मालिक तो वे हैं। पूजा का व्यय उनका है, पुजारीजी तो नौकर मात्र हैं! धार्मिक नौकर। उनके लिए पूजा-अर्चना करने को राजी या विवश।

कुछ लोग जो जीवन के किसी क्षेत्र में सफल हो जाते हैं, जरूरी नहीं कि बाकी मामलों में भी समझ या बुद्धिमत्ता का परिचय दें। क्या ईश्वर का स्मरण या प्रार्थना कोई ऐसी चीज है जिसे हमारे बदले में कोई दूसरा कर सकता है? क्या भक्त अपनी भक्ति किसी और को सौंप सकता है? क्या प्रेमी की जगह कोई और ले सकता है? अगर ऐसा हो सकता है तो फिर यह भी हो सकता है कि ज्ञान की साधना कोई और करे और ज्ञानी हम हो जाएं! ऊपर के उदाहरण से यह न समझें कि धार्मिक मूढ़ता कुछ ही लोगों तक सीमित है, यह तो अधिकांश समाज में फैली हुई है। कुछ लोगों की स्थिति भिन्न बस इसी मायने में है कि वे अपनी आर्थिक हैसियत के कारण वेतन पर नियमित पुजारी रख सकते हैं। वरना लगभग सारे समाज की धार्मिक आस्था सिकुड़ कर या बिगड़ कर बस इसी भूमिका में रह गई है वह सांसारिक सफलताओं की खातिर देवी-देवताओं की कृपाएं प्राप्त करने के लिए तरह-तरह के अनुष्ठानों को आजमाए।

धर्म, जो सांसारिकता से परे जाने का माध्यम था, सांसारिक स्वार्थों के पूरा होने की कसौटी पर कसा जाने लगा है। उसी का धर्म-कर्म, पूजा-पाठ सफल और सार्थक है जिसके दुनियावी काम बन जाएं। भक्तिकाल के दो धार्मिक सबक अत्यंत मूल्यवान हैं। भक्तिकाल ने यह सिखाया कि भक्ति अपने आप में मूल्यवान है, वह कोई सांसारिक हेतु सिद्ध करने के लिए नहीं है। भक्तिकाल का दूसरा महत्त्वपूर्ण सबक यह है कि ईश्वर और भक्त, आराध्य और आराधक के बीच किसी एजेंट या बिचौलिये की जरूरत नहीं है, यानी किसी महंत, पुरोहित या अनुष्ठान आयोजक की जरूरत नहीं है। एक तरह से भक्तिकाल ने धर्म को संगठित तंत्र बनाने के बजाय उसे वैयक्तिक बनाने का संदेश दिया। शायद भक्तिकाल की यही सबसे बड़ी प्रासंगिकता है। धार्मिक मूढ़ता के इस दौर में हम चाहें तो उससे कुछ सीख सकते हैं।

चंचल मुखर्जी, पाण्डेय हवेली, वाराणसी-221001 द्वारा प्रकाशित एवं दी महावीर प्रेस, भेलूपुर, वाराणसी से मुद्रित